अखण्ड ज्योति

अक्टूबर १९९१

पाठकों से एक विनम्र निवेदन

प्रस्तुत अंक उपासना विशेषांक के रूप में आपके सम्मुख है । गायत्री उपासना पर उपलब्ध उपयोगी सामग्री को संकलित कर एक ही अंक में देने का प्रयास किया गया है । यह संकलन परम पूज्य गुरुदेव द्वारा विगत पचास वर्षों में लिखे साहित्य से किया गया है । गायत्री उपासना के बारे में अधिक से अधिक व्यक्तियों को जानकारी मिले, इस उद्देश्य से मात्र उतना ही प्रस्तुतीकरण किया गया है—जितना कलेवर अनुमति देता था । अधिक विस्तार से जानने वालों को गायत्री तपोभूमि मथुरा द्वारा प्रकाशित पूज्यवर एवं वंदनीया माताजी द्वारा लिखित समग्र साहित्य पढ़ना चाहिए ।

संपादकगण
शान्तिकुंज हरिद्वार

✱ सूची ✱

१—गायत्री से बढ़कर और कोई साधना नहीं	१
२—शक्ति की साधना आवश्यक एवं अनिवार्य	२
३—युग परिवर्तन एवं गायत्री महाशक्ति का अवतरण	५
४—जीती जागती सिद्धियाँ एवं प्रत्यक्ष प्रमाण	९
५—परोक्ष जगत के संशोधन हेतु अखण्ड गायत्री जप	११
६—आत्मोत्कर्ष का प्राथमिक सोपान—उपासना	१४
७—तपश्चर्या की असाधारण परिणतियाँ	१७
८—साकार एवं निराकार उपासना की पृष्ठभूमि	१९
९—गायत्री मंत्र में निहित प्रचण्ड शब्द सामर्थ्य	२२
१०—उपासना का विज्ञान	२५
११—साधना की सफलता वातावरण पर निर्भर	२७
१२—परम प्रेरणाप्रद, फलदायी दैनिक जीवन की गायत्री उपासना	३०
१३—गायत्री उपासना से जुड़ी शंकाएँ व उनका समाधान	३३
१४—गायत्री सावित्री और सविता	३६
१५—गायत्री के सिद्ध साधक बूटीसिद्ध महाराज	३९
१६—असामान्य सुयोग उपलब्ध कराने वाली नवरात्रि की साधना	४१
१७—गायत्री की उच्च स्तरीय साधना—१ प्राणशक्ति एक जीवन्त ऊर्जा , महत्वपूर्ण उपलब्धि	४४
१८—गायत्री की उच्चस्तरीय साधना—२ हमारे उच्च चेतन की विलक्षण क्षमताएँ	४७
१९—गायत्री उच्चस्तरीय साधना—३ उल्लास की रसानुभूति एवं शक्ति की सिद्धि	५०
२०—गायत्री के सिद्ध साधक के नाते परम पूज्य गुरुदेव का जीवन	५३
२१—अपनों से अपनी बात— शक्ति का बीजारोपण तीन दिवसीय कार्यक्रमों द्वारा	५७

प्रकाशक—अखण्ड-ज्योति संस्थान, मथुरा—२८१००३

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

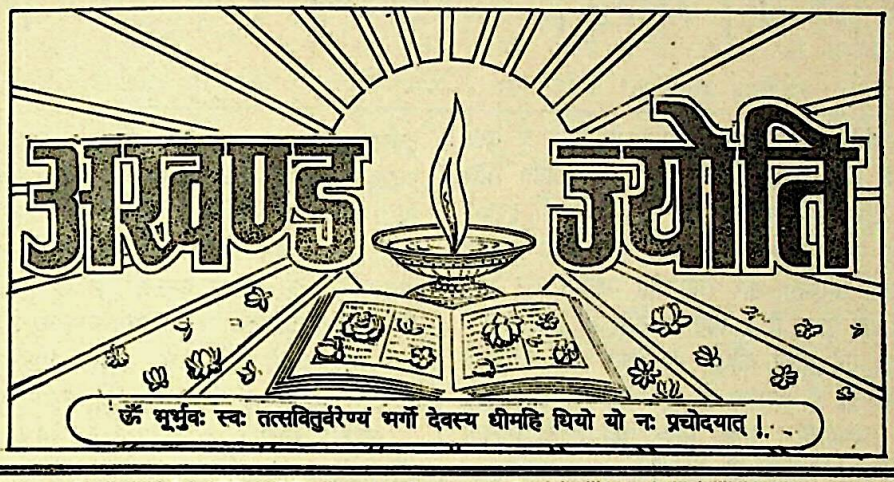

वर्ष ५४ संस्थापक–वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वार्षिक चन्दा
अंक १० भारत में ३५/–विदेश में ३००/–
अक्टूबर १९९१ उपासना विशेषांक आजीवन ५००/–
वि. सं. आश्विन कार्तिक २०४८

गायत्री से बढ़कर और कोई साधना नहीं

वेदों का सार उपनिषद है, उपनिषदों का सार व्याहृतियों समेत गायत्री को माना गया है । गायत्री वेदों की जननी है, पापों का नाश करने वाली है । इससे अधिक पवित्र करने वाला और कोई मंत्र स्वर्ग और पृथ्वी पर नहीं है । गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं, केशव से श्रेष्ठ कोई देव नहीं, गायत्री से श्रेष्ठ कोई मंत्र नहीं । जो गायत्री जान लेता है, वह समस्त विद्याओं का वेत्ता और श्रोत्रिय हो जाता है । उसे जान लेने वाले को और कुछ जानना शेष नहीं रह जाता, वह स्वयं गायत्री रूप तेजस्वी आत्मा बन जाता है ।

भौतिक लालसाओं से पीड़ित प्राणी के लिए भी और आत्मकल्याण की इच्छा रखने वाले मुमुक्षु के लिए भी एक मात्र आश्रय गायत्री ही है । कहा गया है "गायत्री सर्व-कामधुक् " अर्थात् गायत्री समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाली है । जो गायत्री को छोड़कर अन्य मंत्रों की उपासना करता है, वह प्रस्तुत पकवान को छोड़कर भिक्षा के लिए घूमने वाले के समान मूर्ख है । मनु भगवान ने स्वयं कहा है कि अन्य देवताओं की उपासना करे न करे, केवल गायत्री के जप से ही द्विज अक्षय मोक्ष को प्राप्त होता है ।

गायत्री ही तप है । गायत्री ही योग है । गायत्री ही ध्यान और साधना है । गायत्री ब्रह्मवर्चस् रूपा है, इससे बढ़कर सिद्धिदायक साधना कोई और नहीं ।

शक्ति की साधना आवश्यक एवं अनिवार्य

मनीषियों के अनुसार संसार में सभी प्रकार के दुखों के मूल में तीन कारण हैं – अज्ञान, अशक्ति और अभाव । उनके अनुसार इन तीनों कारणों को दूरकर सुखी बना जा सकता है । देखा यह जाना चाहिए कि कुशलता, समर्थता और सम्पन्नता अर्जित कर क्या वास्तव में यह संभव है । सामान्य बुद्धि तो यही कहती है कि ज्ञान एवं कला कौशल में विगत एक शतक में काफी वृद्धि हुई है , साथ ही सुख–सुविधा के साधन भी तेजी से बढ़े हैं । इनसे मनुष्य को शान्ति मिलना चाहिए थी एवं सर्वतोमुखी प्रसन्नता तथा प्रगति के अवसर उपलब्ध होना चाहिए थे । किन्तु ऐसा हुआ नहीं है ।

आज न तो सपन्नता की कमी है न अक्लमंदी की । साधन भी प्रचुर हैं । विज्ञान ने सुविधाओं के अम्बार आसमान से जमीन पर ला खड़े किए हैं । हर समाज, वर्ग व राष्ट्र ने अपने–अपने ढंग से समृद्धि संवर्धन का प्रयास किया है । विज्ञान की चतुर बुद्धि ने उनकी मदद की है और सुख–सुविधाएँ जुटाने वाले सभी साधन आज सन् २००० के इस अंतिम दशक में जी रहे व्यक्ति के पास हैं । जो कुछ भी साधन सामग्री आज की पीढ़ी वालों के पास है,, वैसे सृष्टि के प्रारंभ से लेकर इस शताब्दी के मध्यकाल तक कभी भी किसी के पास नहीं थे । इन सब के बावजूद चारों ओर अभाव ही अभाव, अशान्ति ही अशान्ति छाई दिखाई पड़ती है । ऐसा क्यों ?

वस्तुतः बात यह नहीं है कि पाँच सौ करोड़ मनुष्यों की उचित आवश्यकताओं को पूरा कर सकने के लिए संसाधन इस धरती के पास नहीं हैं । सभी चैन से सुख शान्ति से रह सकें इतने सुविधा साधन हमारी इस पृथ्वी के भाग्य विधाताओं के पास हैं किन्तु संचय की ललक और उपभोग की लिप्सा ने सम्पत्ति का सदुपयोग संभव नहीं रहने दिया है । साधन बढ़ रहे हैं, सम्पत्ति भी तेजी से बढ़ रही है । इतने पर भी यह आशा नहीं बँधती कि जनसाधारण की अभाव, अशक्ति एवं अज्ञान की समस्याओं का हल निकलेगा । व्यक्ति दिन–दिन शारीरिक, मानसिक और आन्तरिक हर क्षेत्र में दुर्बल पड़ता जा रहा है । रुग्णता और दुर्बलता एक प्रकार का फैशन एवं प्रचलन बन गये हैं यद्यपि पौष्टिक खाद्य पदार्थों एवं चिकित्सा साधनों की कहीं कोई कमी नहीं है । इसी प्रकार मस्तिष्कीय विकास के लिए पाठशालाओं से लेकर पुस्तकों के अम्बार, वीडियो से लेकर कम्प्यूटर्स तक सभी साधन उपलब्ध हैं । मनुष्य की जानकारी बढ़ाने वाले सभी साधन विगत दो दशक में तो तेजी से बढ़े व जन–जन को सुलभ हुए हैं ।

अशिक्षा–निवारण व साक्षरता से लेकर ज्ञान–विज्ञान की विभिन्न धाराओं को जन–जन तक पहुँचाने के लिए युद्ध स्तरीय प्रयास सारे विश्व में चल रहे हैं । विज्ञ एवं कुशल–जानकार व्यक्तियों की संख्या भी तेजी से बढ़ रही है । इतने पर भी मनोरोग, हेय–चिन्तन, दुर्भावनाएँ अनुपयुक्त महत्वाकांक्षाएँ जैसे अनेकों आधार खड़े हो जाने के कारण जनमानस में असंतुलन व आक्रोश उत्पन्न करने वाले तत्वों की ही भरमार दिखाई देती है । व्यक्ति शिक्षित तो है पर जीवन कैसे जीना चाहिए, इस विषय में अज्ञानी है । प्रसन्नता एवं प्रफुल्लता कहीं–कहीं अपवाद रूप में दृष्टिगोचर होती है । तनाव, बेचैनी, खिन्नता, उद्विग्नता, असुरक्षा व एकाकीपन की भावना ही सबके सिर पर छाई दिखाई देती है व लगता है किसी तरह सभी जिन्दगी की लाश ढोरहे हैं । विक्षिप्तों, अर्धविक्षिप्तों की संख्या तेजी से बढ़ी है । सनकी और वह भी पढ़े लिखे लोगों में देखे जाते हैं । बढ़ी हुई विपन्नता में हताशा–आत्महत्याओं का दौर बढ़ रहा है । बाहर से चतुर और बुद्धिमान, सुशिक्षित और सभ्य दीखने वाले भी भीतर ही भीतर इतने खोखले और उथले पाए जाते हैं कि कई बार तो उनके पढ़े लिखे होने में भी संदेह होने लगता है । स्वस्थ और संतुलित मनःस्थिति वाले आज खोज निकालना कठिन सा हो गया है ।

परिवारों को देखें तो पारस्परिक स्नेह–सौजन्य, सौहार्द्र कहीं दिखाई नहीं देता । पारस्परिक आत्मीयता का दर्शन दुर्लभ हो गया है । पारिवारिक जीवन नीरस निरानन्द हो चला है । पति–पत्नी के संबंधों के मूल में लगता है, अब यौन लिप्सा ही वह आधार रह गया

है जिससे वे दोनों जुड़े रहते हैं । इसी प्रसंग में बच्चे आ सकते हैं और उनके प्रति जो प्रकृति प्रदत्त माया–मोह रहता है, वह सूत्र भी पति–पत्नी को किसी प्रकार बाँधे रहता है । यदि यौन आकर्षण और बच्चों का मोह हटा लिया जाय तो सहज सौजन्य से प्रेरित भाव भरा दाम्पत्य जीवन कदाचित ही कहीं दृष्टिगोचर होगा । समृद्धि के साथ स्वच्छन्दता ने परिवारों को तोड़ दिया है और लोग सराय में दिन बिताने वालों की तरह किसी तरह दिन गुजारते हैं ।

वस्तुतः अज्ञान ही वह कारण है जिसकी परिणति-स्वरूप आज यह संकट छाया चारों ओर दिखाई देता है । आत्मोत्कर्ष की बात तो दूर व्यक्ति का चिन्तन इतना सीमित होकर रह गया है कि वह सारी सुख–सुविधाओं का अम्बार होते हुए भी उनके सदुपयोग की समझदारी नहीं जुटा पाता । अनेकों भूलें उससे होती चली जाती हैं किन्तु विवेक के, दूरदर्शिता के अभाव में कार्यों को प्रेरणा व दिशा मिलती कहीं दीखती नहीं । फलतः वह दुःखी पीड़ित उद्विग्न होता चला जा रहा है । मनीषियों की बात समझ में आती है कि अज्ञान दुखों का भूलभूत कारण है ।

अशक्ति दुखों का दूसरा कारण बताया गया है व इस पर ऊपर विवेचन भी किया गया कि आज व्यक्ति की जीवन के प्रति आस्थाएँ गड़बड़ा जाने से वह शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से दीन–दुर्बल तथा खोखला एवं मानसिक दृष्टि से अपंग–मनोविकार ग्रस्त हो गया है । अस्पताल बढ़ते ही चले जा रहे हैं । चिकित्सा विज्ञान ने आधुनिकतम साधन जुटा लिए हैं पर अशक्ति मिटने का नाम ही नहीं लेती , एक बीमारी के लिए औषधियों का अविष्कार होता है, तब तक अगणित नई जन्म ले लेती हैं । फुंसियों पर दवाएँ लगाने से रक्त की विषाक्तता तो दूर हो नहीं सकती । आज समर्थता बढ़ाने के लिए इसी स्तर के प्रयास चल रहे हैं । पत्तियों को दिया गया खाद पानी जड़ों तक कैसे पहुँचे ? यही वह बिडम्बना है जिसके चलते आज सारा समाज, विश्व रुग्ण–दुर्बल अशक्त नजर आता है । अचिन्त्य चिन्तन से पैदा हुआ तनाव इतना विस्फोटक बन गया है कि अगणित रोग यथा उच्च रक्तचाप, हृदयरोग, मस्तिष्कीय रक्तस्राव, अपच, मधुमेह, पेप्टिक अल्सर, दमा जैसी असाध्य व्याधियाँ मात्र इसी कारण हो रही हैं । स्वास्थ्य खराब हो, बीमारी ने घेर रखा हो तो स्वादिष्ट भोजन, रूपवती तरुणी, मधुर गीत वाद्य, सुन्दर दृश्य, सैरसपाटे के साधन सभी निरर्थक हैं । यह अशक्ति हर क्षेत्र में है, चाहे वह शारीरिक, मानसिक या सामाजिक हो अथवा बौद्धिक एवं आत्मिक । श्रुति कहती है कि बलहीन को आत्मोत्कर्ष का पथ नहीं मिलता "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः ।" तो इस तरह अशक्ति के रहते आज का मनुष्य दुखी है तो कारण भी समझ में आते हैं ।

अभाव जन्य दुख तीसरे प्रकार के हैं जिन से आज का विकसित संपन्न कहा जाने वाला मनुष्य ग्रसित है । विश्व में सब कुछ होते हुए भी उपभोग लिप्सा इतनी तेजी से बढ़ी है कि व्यक्ति को जो अपने पास है, उससे तनिक भी संतोष नहीं । अभावग्रस्त लोग जितने अधिक खिन्न पाए जाते हैं, उससे अधिक उद्विग्न वे हैं, जिनके पास साधनों का बाहुल्य है । धन कमाना एक बात है एवं उसका सदुपयोग करना बिल्कुल दूसरी बात है । एक पक्ष तो बढ़ रहा है पर दूसरे की दुर्दशा ने सारा संतुलन ही बिगाड़ दिया । विलासिता, आलस्य, बनावट, शान–शौकत की मदें इतनी खर्चीली हो गयी हैं कि भोजन वस्त्र जैसे आवश्यक व्यय तो उनकी तुलना में नगण्य जितने ही लगते हैं । अहंकार और बड़प्पन सहोदर जैसे बनते चले जा रहे हैं । सम्पन्नता के साथ दुर्व्यसन बढ़ रहे हैं । नशाखोरी

शर शैया पर घायल पड़े भीष्म पितामह से जब युधिष्ठिर पूछते हैं कि वह कौनसा मंत्र है , जिसके जपने से विशेष प्रतिफल मिलता है तथा शान्ति, पुष्टि, सुरक्षा, निर्भय की प्राप्ति होती है, तो भीष्म पितामह कहते हैं–"हे युधिष्ठिर ! जो व्यक्ति गायत्री का जप करते हैं, उनको धन , पात्र, गृह सभी भौतिक वस्तुएँ प्राप्त होती हैं । उनको दुष्ट, राक्षस, अग्नि, जल, वायु, सर्प, किसी का भय नहीं रहता । चारों वर्णों व आश्रमों में सफलतापूर्वक इसका जप किया जा सकता है । जहाँ यह मंत्र जप होता है वहाँ न बच्चों की अकाल मृत्यु होती है, न किसी को किसी प्रकार का कष्ट व क्लेश ही होता है ।"

यह महत्वपूर्ण प्रसंग महाभारत के अनुशासनपर्व के अध्याय १५० में आया है ।

से आज संपन्न वर्ग जितना पीड़ित है, उतने अन्यवर्ग के नहीं । उसकी प्रतिक्रिया भी अनेकानेक विग्रह उत्पन्न करती है । आजीविका सीमित व लिप्सा असीम हो तो फिर ऋणी बनने या कुकर्म करके उपार्जन करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रह जाता । अपराय इसी कारण बढ़ते जा रहे हैं । वस्तुतः आज उँगली पर गिनने योग्य हैं जो कह सकें कि हम अभावग्रस्त नहीं हैं । सभी को अर्थ संकट से गुजरने की शिकायत है ।

आज की परिस्थितियों का ऊपर लिया गया जायजा पाठकों को निराशा की भावना में डुबाने के लिए नहीं, अपितु वस्तु स्थिति बताने के लिए प्रस्तुत किया गया कि यदि आज व्यक्ति दुखी है, उद्विग्न है तो इसका कारण क्या है व उपचार क्या होना चाहिए ? जब एक ओर हम युग संधि की बात कहते हैं व उज्ज्वल भविष्य का उद्घोष करते हैं तो यह विरोधाभास किस लिए ? कैसे आने वाले कुछ ही वर्षों में समय बदलेगा व लोगों के कष्ट दूर ही नहीं होंगे, सतयुग की वापसी भी होगी तथा सुख–शान्ति चैन का साम्राज्य चारों ओर होगा ?

वस्तुतः जहाँ दुखों का कारण बताया गया है वहाँ यह भी कहा गया है कि "शक्ति" का अवलम्बन लेने से यह दुख भी दूर होंगे । "शक्ति" कौनसी ? वही जो कभी महाकाली दुर्गा बनकर रक्तबीज, महिषासुर का मर्दन करती है व शुम्भ निशुम्भ का संहार करती देखी जाती है । गायत्री महाशक्ति की आज उसी रूप में उपासना किए जाने की आवश्यकता है ताकि उस त्रिपदा गायत्री की तीनों धाराएँ व्यक्ति का अज्ञान, अभाव, अशक्ति मिटाएँ व नवयुग का सूत्रपात करें । दुखों के कारणों में भी प्रधान दो ही हैं अज्ञान और अशक्ति । अभाव तो इनकी परिणति मात्र है । गायत्री की तीनों शक्ति धाराएँ ह्रीं श्रीं और क्लीं–सरस्वती लक्ष्मी और काली सद्ज्ञान, वैभव एवं शक्ति की प्रतीक हैं तथा मानव मात्र के दुखों के निवारण हेतु ऋषि मुनियों के श्रमसाध्य शोध अनुसंधान का परिणाम हैं ।

गायत्री का तत्वज्ञान सृष्टि के आदिकाल से लेकर अब तक इस धरती पर निवास करने वाले जीवधारियों का तब तब कल्याण करता आया है जब–जब उनने संकटों को आमंत्रित किया है । ऋतम्भरा प्रज्ञा–गायत्री अध्यात्म का प्राण है । इस महामंत्र के चौबीस अक्षरों में मान्यताओं, संवेदनाओं और प्रेरणाओं का सुनियोजित तारतम्य विद्यमान है । युग परिवर्तन के लिए जन–जन में शक्ति संचार के लिए इस एक महामंत्र के अतिरिक्त और कोई उपाय अब नहीं है ।

शक्ति की साधना हेतु इस वर्ष को शक्ति साधना वर्ष घोषित किया गया है । जिस महामंत्र का आश्रय लेकर ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने कभी नूतन सृष्टि की रचना की थी, उसी का अवलम्बन लेकर सतयुग की वापसी अब संभव होगी । आज के युग के विश्वामित्र युगऋषि पूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य की सूक्ष्म–कारण शरीर की सत्ता इन दिनों सक्रिय है व जन–जन के मन में उल्लास–प्रेरणा उभारने में लगी है । उनके द्वारा सबको सुलभ किये गए गायत्री मंत्र के तत्वज्ञान को घर–घर पहुँचा कर, युगशक्ति का अवतरण कर निश्चित ही आज की परिस्थितियाँ बदली व संतप्त–दुखी मानव जाति को शक्ति व शान्ति दी जा सकती है । *

योगेश्वर जी उद्धड़ जोशी एक सिद्ध गायत्री सन्त के रूप में गुजरात में प्रख्यात हैं । नर्मदा तट पर चांदोड़ में वे निवास करते थे तथा गायत्री उपासना में ही रुचि लेते थे । एक बार मन में इच्छा होने पर कि योग्य गुरु मिल जाते तो ठीक रहता, इनके गुरु उनके समक्ष साधना की अवधि में प्रकट हुए व उनके सिर पर स्पर्श कर उन्हें उनके पूर्व जन्मों की उनने जानकारी करायी । पूर्व जन्म में गुरु के द्वारा दिया नाम उद्धड़ साधना, उपासना, उस जन्म की अनुभूतियाँ सब उन्हें याद आती चली गयीं । यह भी याद आया कि कैसे एक सुन्दरी रूपवती युवती के रूप जाल में उलझ कर वे साधना मार्ग से विरत हो गए थे व उन्हें विष देकर मार दिया गया था ।

गुरु के पुनः मिलने पर इस जन्म के वयाशंकर का पुनर्जन्म उद्धड़ के रूप में हुआ व जहाँ से साधना छूटी थी, उससे आगे की मंजिल उनने पार की । गायत्री साधना के बाद त्रिकालज्ञ की, भूत–भविष्य ज्ञाता की, सिद्धि उन्हें मिल गयी थी । उनकी वाणी ऐसी सिद्ध हो गयी थी , कि वे जो भी कहते वह होकर रहता था ।

युग परिवर्तन एवं गायत्री महाशक्ति का अवतरण

युग परिवर्तन अपने समय का एक सुनिश्चित तथ्य है । इस विश्व उद्यान का सृजेता अपनी इस अनुपम संरचना को इस तरह नष्ट भ्रष्ट होने नहीं देना चाहता जिस तरह वसुधा इन दिनों विनाश के गर्त में जा गिरने के लिए द्रुतगति से बढ़ती जा रही है । मनुष्य परम पिता परमात्मा के वर्चस् और वैभव का प्रतीक है । सारा कौशल एकत्र कर उसे बड़े अरमानों के साथ बनाने वाले ने उसे बनाया है ।किन्तु जब वही सामूहिक आत्महत्या के सरंजाम जुटा रहा हो एवं उसका बुद्धि वैभव रूपी भस्मासुर संस्कृति की पार्वती को हथियाने और शिव को मिटाने पर उतारू हो रहा हो तो "यदा यदा हि धर्मस्य——" का आश्वासन निष्क्रियता ओढ़े ऐसे ही नहीं रह सकता । सन्तुलन के लिए प्रतिज्ञाबद्ध नियति को अपने नियमन का गतिचक्र चलाना ही था । सो वह इन्हीं दिनों संपन्न हो रहा है । जिन्हें पूर्वाभास की संवेदन शक्ति उपलब्ध है, वे देखते हैं कि निशा बीत गई और ऊषा की मुसकान आने में अब बहुत विलम्ब नहीं है ।

भगवान के अवतार, समय की आवश्यकता के अनुसार अपने स्वरूप और कार्यक्षेत्र को विनिर्मित करते रहे हैं । जब जिस प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं तब उसी संतुलन को सही करने के लिए सूक्ष्म जगत में एक दिव्य चेतना प्रादुर्भूत हुई है । सृष्टि के आदि में सब ओर जल ही जल था तब उस क्षेत्र की अव्यवस्था को मत्स्यावतार ने संभाला था ।जल और थल पर जब छोटे प्राणियों की हलचलें बढ़ीं, तो तदनुरूप क्षमता वाली कच्छपकाया उस समय का संतुलन बना सकी । उन्हीं के नेतृत्व में समुद्र मंथन का पुरुषार्थ संभव हुआ । हिरण्याक्ष द्वारा जल में समुद्र में छिपी सम्पदा को ढूँढ़ निकालने तथा तस्कर का दमन करने में वाराह रूप ही समर्थ हो सकता था, वही धारण भी किया गया ।

उच्छृंखलता बढ़ने पर नृसिंहों की आवश्यकता पड़ती है व उनका ही पराक्रम अग्रणी रहता है । भगवान ने उन दिनों की आदिम परिस्थितियों में नर और व्याघ्र का समन्वय आवश्यक समझकर ही दुष्टता के दमन हेतु कदम उठाए । संकीर्ण स्वार्थ, संचय व उपभोग की पशु प्रवृत्ति बढ़ने पर उदारता के विस्तार की आवश्यकता पड़ी ताकि संपन्नों को वितरण के लिए स्वेच्छा सहमत किया जाय । यही वामन अवतार है ।

परशुराम, राम, कृष्ण व बुद्ध के अवतार इसकी अगली कड़ी में हैं । सबके अवतरण का लक्ष्य एक ही था बढ़ते हुए अनाचार का प्रतिरोध और सदाचार का समर्थन–पोषण । परशुराम ने सामन्तवादी आधिपत्य को शस्त्रबल से निरस्त किया । लोहे से लोहा काटा । श्रीराम ने मर्यादाओं के परिपालन पर जोर देते हुए अनय से प्रतिरोध किया । श्रीकृष्ण ने छद्म से घिरी हुई परिस्थितियों का शमन करने हेतु "विषस्य विषमौषधम् " की उपाय अपनाया । उनकी लीलाओं में इसीलिए कूटनीतिक दूरदर्शिता की प्रधानता है । भगवान बुद्ध ने धर्मतत्व में विकृतियों के समावेश को देखते हुए धर्मव्यवस्था , सज्जनों के संगठन एवं विवेक को सर्वोपरि मानने का प्रवाह बहाया था । धर्मं शरणं गच्छामि से लेकर बुद्धं शरणं गच्छामि तक का शंखनाद ही बुद्ध का लीला संदोह है ।

अतीत के कुछ प्रसंगों में दुष्टता की उद्दण्डता ही विश्व विनाश के लिए उभरती रही है । फलतः उसे निरस्त करने के लिए शस्त्रधारी भगवान अवतरित होते रहे हैं । वाराह के दाँत, नृसिंह के नख परशुराम का फरसा, श्रीराम का धनुष व श्रीकृष्ण का चक्र उसी प्रसंग में सहज ही सामने आ जाते हैं । इस बार दुष्टता नहीं, भ्रष्टता का उभार है । उसके लिए बुद्ध की परम्परा ही कारगर हो सकती है । प्रज्ञावतार ही बुद्धावतार का उत्तरार्ध या दशमावतार है एवं युगचण्डी का साक्षात्कार दुष्टता व भ्रष्टता के प्रखर व उच्चस्तरीय उपचार के रूप में हम सब इन्हीं दिनों करने जा रहे हैं । विकारों से आगे बढ़कर आस्थाओं के क्षेत्र में समाई हुई भ्रष्टता को निरस्त करना अपेक्षाकृत जटिल कार्य है । इतना व्यापक इतना जटिल और इतना कठिन काम भगवती आद्य शक्ति ही कर सकती है , इस बार के अज्ञानजन्य अनाचार को अपने प्रचण्ड आलोक से मिटाने महाप्रज्ञा को, ब्राह्मी शक्ति

को स्वयं ही आना पड़ा है । पार्षदों से यह काम चलने वाला नहीं था ।

इस बार युग परिवर्तन की रणस्थली जिस "धर्म क्षेत्रे कुरुक्षेत्रे " की विस्तृत भूमि में फैली है, उसे लोकमानस कह सकते हैं । परिष्कार–परिवर्तन इसी क्षेत्र में होना है । सेनापतियों के खेमे उसी भूमि में गड़ रहे हैं । लक्ष्य जनमानस का परिष्कार है । प्रस्तुत समस्याएँ इतनी जटिल हैं कि उनका समाधान बाह्य उपचारों से किसी भी प्रकार संभव न हो सकेगा । चिंतन का प्रवाह उलटे बिना विनाश की विभीषिका को विकास की संभावना में परिवर्तित नहीं किया जा सकता । चिन्तन की दिशाधारा को सुव्यवस्थित करने वाले दिव्य प्रवाह को युगान्तरीय चेतना कहा जा सकता है । यही युग शक्ति गायत्री है और इसी को युग परिवर्तन का उद्गम स्रोत समझा जाना चाहिए ।

गायत्री मंत्र यों सामान्य दृष्टि से देखने पर पूजा उपासना में प्रयुक्त होने वाला हिन्दू धर्म में प्रचलित एक मंत्र मात्र प्रतीत होता है । मोटी दृष्टि से उसकी आकृति और परिधि छोटी मालूम पड़ती है । किन्तु वास्तविकता इससे कहीं अधिक व्यापक है । गायत्री मंत्र शक्ति से ओतप्रोत है । उसका प्रत्यक्ष रूप चौबीस अक्षरों के गुंथनों में देखा जा सकता है । भारतीय धर्म का उसे प्राण–उद्गम एवं मेरुदण्ड कह सकते हैं । शिखा एवं यज्ञोपवीत गायत्री है । उसे वेदमाता, देवमाता कहा गया है । ब्रह्मविद्या का तत्वज्ञान और ब्रह्मवर्चस् का तपविधान इसी उद्गम केन्द्र में गंगोत्री यमुनोत्री की तरह प्रकट प्रस्फुटित होते हैं । इसी गायत्री महाविद्या के आलोक में हमारे देवमानवों के अन्तःकरण उत्कृष्टता के ढाँचे में ढलते रहे हैं ।

गायत्री महाशक्ति का प्रथम अरुणोदय भारत भूमि पर–ब्रह्मवर्त में हुआ । इसके लिए स्वभावतः इसी क्षेत्र में सर्वप्रथम और सर्वाधिक परिमाण में अपना वर्चस्व प्रकट कर सकना अनायास ही संभव हो सका । पर इससे यह आशय नहीं निकाला जाना चाहिए कि उसका सीमा–क्षेत्र उतना ही स्वल्प है । जापानी अपने देश में सर्वप्रथम सूर्य का उदय होने की मान्यता बनाए हुए हैं और अपने को सूर्य पुत्र कहते हैं । तिसपर भी यह देखा जा सकता है कि भगवान सूर्य जापान तक सीमित नहीं हैं । वे समस्त भूखण्ड को समान रूप से अपने अनुग्रह से लाभान्वित करते हैं । गायत्री को इसी रूप में समझा जाना चाहिए । वेदमाता उसका आरंभिक रूप है । उसकी व्यापकता देव माता और विश्वमाता के रूप में होती देखी जा सकती है । अस्तु हिन्दू धर्मानुयायिओं ने अधिक प्रचलित संस्कृत शब्दावली में गुन्थित और उपासना उपचार में प्रयुक्त होने पर भी उसे इतनी ही परिधि में सीमित नहीं किया जा सकता । उसका कार्य क्षेत्र और विस्तार असीम है, अत्यधिक है ।

छोटे से बीज के अन्तराल में विशाल वृक्ष की समस्त विशेषताएँ सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहती हैं । परमाणु तनिकसा होता है पर उसकी अन्तरंग क्षमता और गतिशीलता को देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है । शुक्राणु में पाए जाने वाले गुण सूत्र प्रत्यक्षतः बहुत ही सूक्ष्म होते हैं पर उनमें महान मानव का अस्तित्व जमा बैठा होता है । गायत्री मंत्र को भी ऐसी ही उपमा दी जा सकती है । ऋषियों के अनुसार उसका आकार छोटा होते हुए भी व स्थूल रूप से उपयोग तनिकसा दीखने पर भी वस्तुतः संभावना इतनी व्यापक है कि उसे नई दुनिया गढ़ देने में समर्थ कहा जा सकता है ।

> ***यथा मधु च पुष्पेभ्यो घृतं दुग्धाद्रसात्पयः । एवं हि सर्ववेदानां गायत्री सार मुच्यते ।।***
>
> ***–व्यास***
>
> ***"जिस प्रकार पुष्पों का सार मधु, दूध का घृत, रसों का सार दूध है, उसी प्रकार समस्त वेदों का सार गायत्री है ।***

गायत्री के दो पक्ष हैं ज्ञान व विज्ञान । ब्राह्मी चेतना की महाशक्ति इन्हीं दो रूपों में प्रकट होती है । ज्ञान पक्ष को उच्चस्तरीय तत्वज्ञान की ब्रह्मविद्या की ऋतम्भरा की संज्ञा दी जा सकती है । इसका उपयोग आस्थाओं और आकांक्षाओं को उच्चस्तरीय बनाने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण के रूप में किया जा सकता है । बौद्धिक उत्कृष्टता के साधन इसी आधार पर जुटते हैं ।

गायत्री का विज्ञान पक्ष उपासना व साधना की अनेकों प्रथाओं पद्धतियों के रूप में बिखरा पड़ा है । मोटे रूप से तो यह ऐसा लगता है मानों किसी देवी–देवता की अभ्यर्थना कर मनोकामना की मनुहार इसमें की जा रही है । किन्तु वास्तविकता ऐसी है नहीं । मानवीसत्ता के अन्तराल में इतनी महान संभावनाएँ और क्षमताएँ प्रसुप्त भरी पड़ी हैं कि उन्हें

प्रकारान्तर से ब्रह्मचेतना की "ट्रू कॉपी" कहा जा सकता है । अंतराल का सोया पड़ा रहना ही दरिद्रता है और उसकी जाग्रति में सम्पन्नता का महासागर लहलहाता देखा जा सकता है । जो उसे जगा लेते हैं, वे मनवांछित फल पा लेते हैं । संपत्ति, यश, कीर्ति, समर्थता–दीर्घायुष्य, नीरोगता सब इसी जागरण की फल-श्रुति हैं । जो जगाने के बाद इन क्षमताओं को साध व सुनियोजित कर लेते हैं, उन्हें महामानव की संज्ञा दी गयी है । ऐसे व्यक्ति सदैव ऐतिहासिक भूमिकाएँ निबाहते आए हैं, स्वयं धन्य बने हैं व अपने संपर्क क्षेत्र के जनसमुदाय व वातावरण को उनने धन्य बनाया है ।

व्यक्ति यों देखने में तो साढ़े पाँच फुट लम्बा और डेढ़मन का कलेवर लिए खाना खाता व पानी पीता दिखाई देता है पर उसकी मूलसत्ता चेतना के गह्वर अंतःकरण में छिपी बैठी है । वहाँ जैसा भी कुछ वातावरण होता है, उसी में चेतना को निर्वाह करना पड़ता है । फलतः उसका स्वरूप भी कुछ वैसा ही बन जाता है । अंतःकरण का स्तर ही चेतना की उत्कृष्टता और निकृष्टता के लिए उत्तरदायी है । इस अन्तराल के मर्मस्थल का स्पर्श भौतिक उपकरणों से संभव नहीं । उस गहराई तक तो सचेतन उपचार ही पहुँचते हैं । गायत्री महामंत्र की साधना–उपासना का प्रयोजन यही है । इसी उपाय–उपचार को गायत्री की ब्रह्मविद्या या गायत्री महाविज्ञान कहते हैं । उसका उद्देश्य एक ही है प्रसुप्त का जागरण । मनुष्य की महानता इन्द्रियातीत है । उसे सुधारने, उभारने, उछालने के तीनों प्रयोजन पूरा करने वाली प्रक्रिया का नाम गायत्री उपासना है । विज्ञान पक्ष के सहारे इस तरह भौतिक प्रगति के अनेकों आधार खड़े होते हैं । आज के युग की सामयिक प्रयोजनों की पूर्ति के लिए वही युग शक्ति के रूप में भूमिका निभाने जा रही है ।

भगवती गायत्री का निष्कलंक प्रज्ञावतार अगले दिनों अपने त्रिपदा नाम के अनुरूप तीन धाराओं के प्रवाह के उभरने के रूप में होगा । ये हैं सरस्वती, दुर्गा एवं लक्ष्मी । तीनों का सम्मिलित स्वरूप आद्यशक्ति गायत्री है जिसकी परिणति होगी–अन्तःक्षेत्र में आध्यात्मिकता का उद्भव और बहिरंग में नीतिमत्ता का उभार । सरस्वती बौद्धिकता की परिपक्वता के साथ कला–उल्लास का उभार लेकर अवतरित होगी । यह सद्ज्ञान का स्वरूप है । दुर्गा–महाकाली सामूहिकता का, सहकारिता का अनीति विरोधी संघर्षशीलता–समर्थता का प्रतिनिधित्व करेंगी । लक्ष्मी भौतिकता एवं संपन्नता की प्रतीक है । जहाँ सद्ज्ञान व समर्थता हो वहाँ संपन्नता न आए, ऐसा हो ही नहीं सकता । अतः गायत्री महाशक्ति के अवतरण के साथ ही मनुष्य के दुखों का निवारण तो है ही, वे सभी लक्ष्य जो भौतिक जगत में हर व्यक्ति का इष्ट बनते हैं, स्वतः सिद्धि की दिशा में अग्रगामी होंगे । गायत्री वस्तुतः अंतःक्षेत्र की उत्कृष्टता व सुसंस्कारिता को जगाती है । उनका अवतरण अर्थात् नीति, धर्म एवं अध्यात्म का अवतरण । वे वेदमाता कहलाती हैं । वेद प्रतीक हैं तत्वज्ञान, अनुशासन व नीति निर्धारण के ।

स्वामी विशुद्धानन्द जी, जो प्रख्यात गायत्री उपासक व सूर्य विज्ञान के ज्ञाता रहे हैं, ज्ञान विज्ञान के अपने अनुभवों को प्रत्यक्ष चमत्कारों के रूप में यदाकदा दिखा दिया करते थे । ब्रह्मा की नाभि में से कमल उत्पन्न हुआ कि नहीं इसपर भक्तों में चर्चा चलने पर उनने एक बार अपनी नाभि में से कमल उत्पन्न करके दिखा दिया था । उनने कहा कि सविता विज्ञान के समक्ष आज का विज्ञान तो बौना है व इतना कहकर गायत्री जप करते-करते वे लेट गए । नाभि के स्थान को स्पर्श करते ही वह रक्तिम लाल हो उठा व उसमें से धीरे-धीरे एक डेढ़ फुट लम्बा कमल नाल निकला जिसके सिर पर अत्यन्त सुन्दर कमल पुष्प था । उसकी गंध से पूरा कमरा सुवासित हो उठा । बाबा बोले अभी सूर्य का तेज कम है, नहीं तो यह कमल छत तक भी पहुँच सकता था । थोड़ी देर बाद वही कमल नाल सहित वापस नाभि प्रदेश में चला गया ।

योगीराज ने बाद में चर्चा करते हुए इसे गायत्री साधक की संकल्प शक्ति का चमत्कार बताया ।

वेद प्रतीक हैं तत्वज्ञान, अनुशासन व नीति निर्धारण के ।

अपने इस युग की सभी विकृतियाँ अपेक्षाकृत अधिक गहरी हैं । अनास्था से जूझने के लिए अंतराल का परिशोधन व जनमानस का परिष्कार ही सभी समस्याओं का समाधान निकाल सकता है । उज्ज्वल भविष्य के निर्धारणों का यही केन्द्र विन्दु है । ब्राह्मीचेतना का अवतरण अगले दिनों अनास्थाओं का उन्मूलन व आस्थाओं का आरोपण करता देखा जा सकेगा । हम सब उसे देखेंगे, यह हमारा सौभाग्य है । सूक्ष्मजगत में कोलाहल मचाने वाली युगचेतना

प्रज्ञावतार की ही है, यह सुनिश्चित माना जाना चाहिए ।

"युग शक्ति गायत्री " की अवतरण परम्परा में सर्वप्रथम वेदमाता स्वरूप ब्रह्माजी के माध्यम से प्रकट हुआ । भावना के सात अवतार सात व्याहृतियों के रूप में प्रकट हुए जो सात ऋषियों के नाम से विख्यात हुए । युग परिवर्तन के चक्र में इनके बाद नौवां सबसे पिछला अवतार विश्वामित्र ऋषि के रूप में हुआ, जिन्हें नूतन सृष्टि का स्रजेता कहा जाता है । प्रस्तुत गायत्री मंत्र के विनियोग उद्घोष में गायत्री छन्द, सविता देवता एवं विश्वामित्र ऋषि का उल्लेख होता है । अस्तु अबतक के युग में विश्वामित्र ही नवम अवतार हैं । अवतारों की श्रंखला का यह वर्णन परम्परागत दशावतार जिनकी प्रारंभ में व्याख्या की गयी है , से कुछ भिन्न भले ही जान पड़ता हो, पर है यह अलंकारिक विवेचन शास्त्रोक्त तथा आज की परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में ही ।

इस प्रकार ब्रह्माजी के माध्यम से वेदमाता का अवतरण हुआ–वेदमाता अर्थात् सद्ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी । सप्तर्षियों के माध्यम से देव माता का अविर्भाव हुआ । देवमाता अर्थात् देव संस्कृति की जन्मदात्री, देव वृत्तियों का पोषण करने वाली देवी । ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के माध्यम से विश्व माता का अवतार हुआ । विश्वमाता अर्थात् सुसंस्कृत और समुन्नत विश्व का निर्माण करने वाली, सारी वसुधा को एक कुटुम्ब बना देने वाली शक्ति । नौ अवतरण पूरे हुए । दसवाँ अब अपने समय का अवतार, इन्हीं तीनों आधारों का समग्र–सुविकसित रूप युग शक्ति गायत्री का निष्कलंक प्रज्ञावतार का होने वाला है । तमिस्रा का निराकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का शुभारंभ इसी दिव्य भावना के साथ प्रादुर्भूत होता हुआ हम सब इन्हीं चर्मचक्षुओं से अगले दिनों प्रत्यक्ष देख सकेंगे । ✳

महर्षि याज्ञवल्क्य के बाल्यकाल का प्रसंग है । वे नारायण तीर्थ नामक स्थान में महर्षि विदग्ध शाकल्य के आश्रम में ऋग्वेद का ज्ञान पा रहे थे । आनर्त राष्ट्र के नरेश सुप्रिय एक दिन आश्रम में आए व कुछ दिन ऋषि मुनियों के सत्संग में रहने की इच्छा व्यक्त की । महर्षि विदग्ध ने याज्ञवल्क्य की नियुक्ति राजा को नित्य अभिषेक कर आशीर्वाद देने के लिए कर दी ।

तीसरे दिन याज्ञवल्क्य राजा के पास पहुँचे तो राजा नित्यकर्म से निवृत्त नहीं हुए थे । राजा ने नम्रतापूर्वक कहा– " ऋषिवर ! आप कुछ देर रुकें ।" याज्ञवल्क्य ने कहा कि "राजन् ! यह आश्रम है । यहाँ का एक–एक क्षण बहुमूल्य है । आप यहाँ की मर्यादा निबाहें ।" राजा ने उन्हें अभिमानी ब्राह्मण समझकर कहा " ऋषि कुमार ! यदि तुम रुकना नहीं चाहते तो सामने पड़े लक्कड़ पर मेरे लिये लाया तपःपूत जल डाल कर चले जाओ ।" याज्ञवल्क्य ने ऐसा ही किया ।

सायंकाल राजा की दृष्टि सूखे लक्कड़ पर पड़ी जो दिन भर में हरा हो गया था व उसमें नवीन पत्तियाँ, फूल लग गये थे । राजा ने सोचा जिस जल ने इस शुष्क काष्ठ को हरा भरा कर दिया, वह यदि मुझ पर पड़ता तो मुझे तो निहाल कर देता । अशांत स्थिति में वे महर्षि के पास पहुँचे व कुमार याज्ञवल्क्य से क्षमा माँगी ।

यही ऋषि कुमार जो महर्षि विश्वामित्र के कुल के थे व ऋषि देवरात के पुत्र थे, अपनी गायत्री साधना के बलबूते चारों वेदों के ज्ञाता महर्षि याज्ञवल्क्य बने । यज्ञ प्रक्रिया का वैज्ञानिक अनुसंधान इन्हीं के द्वारा संपन्न हुआ ।

जीती जागती सिद्धियाँ एवं प्रत्यक्ष प्रमाण

शास्त्रों में उल्लेख है–"गायत्र्या सर्व संसिद्धिर्द्विजानां श्रुति संमता ।" अर्थात् वेद वर्णित सारी सिद्धियाँ गायत्री उपासना से मिल सकती हैं । इस संदर्भ में देवताओं, ऋषि–महर्षियों, सिद्ध संतों, महापुरुषों ने भी अपने अनुभवों की चर्चा की है जिससे गायत्री की सर्वोपरि महत्ता का प्रतिपादन होता है और इस तथ्य का समर्थन होता है कि जिन्होंने भी गायत्री उपासना का अवलम्बन लिया, उनने भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में उच्चस्तरीय सफलतायें प्राप्त कीं और आप्तकाम बने ।

आत्मिक प्रगति के क्षेत्र में उच्च सफलतायें प्राप्त करने वाले सिद्ध साधकों का इतिवृत्त बताता है कि इनमें से अधिकांश ने गायत्री महाशक्ति का आश्रय लिया और आत्मोन्नति के चरम उत्कर्ष पर पहुँचे । काठिया बाबा भी उन्हीं में से एक हैं जिन्हें गायत्री की सिद्धियाँ प्राप्त थीं ।

ब्रजभूमि वृन्दावन को अपनी तपस्थली बनाने वाले काठिया बाबा कुछ समय पूर्व तक अपनी विभूतियों और ऋद्धि-सिद्धियों के कारण सर्व साधारण के केन्द्र बने हुए थे । नाम तो उनका महात्मा रामदास था, परन्तु वे काठ की कोपीन पहनते थे, इसलिए लोग उन्हें काठिया बाबा के नाम से ही अधिक जानते थे । इस काठ की कोपीन के अलावा उन्होंने शरीर पर भी कोई वस्त्र धारण नहीं किया । सिद्ध–संतों की यह विशेषता होती है कि उनके प्रारंभिक जीवन के संबंध में प्रायः किसी को विशेष कुछ मालुम नहीं होता, न वे स्वयं इसका परिचय देते हैं, क्योंकि कौन किस परिवार में जन्मा ?- किसका बचपन कैसे व्यतीत हुआ ? यह नितान्त महत्वहीन है । लौकिक दृष्टि से किसी का जीवन चरित्र लिखने में इन बातों की आवश्यकता भले ही अनुभव हो, पर आध्यात्मिक दृष्टि से इन जानकारियों का कोई अर्थ या महत्व नहीं है । सो काठिया बाबा के सम्बन्ध में भी किसी को अधिक कुछ नहीं मालुम ।

यदाकदा चर्चा प्रसंगों में वे अपने पूर्व जीवन के बारे में कोई संकेत करते भी थे तो वह केवल आध्यात्मिक जीवन से ही सम्बन्धित होता था । महात्मा रामदास को बचपन से ही गायत्री उपासना में रुचि हो गयी थी । अपने गाँव के एक वटवृक्ष के नीचे बैठकर वे नियमित रूप से गायत्री जप करते थे । एक दिन कोई महात्मा उनके गाँव आये । बालक रामदास को उन्होंने वटवृक्ष के नीचे ध्यान मुद्रा में बैठे देखा तो देखते ही रहे । ध्यान जब पूरा हुआ तो उन महात्मा ने रामदास से अकस्मात ही कहा–"बेटा तुम गायत्री उपासना करते हो न ?"

"जी हाँ महाराज !" रामदास ने कहा और महात्मा के चरणों में प्रणाम कर लिया । आशीर्वाद देते हुए उन महात्मा ने कहा 'गायत्री कामधेनु है । यह अपने उपासक की समस्त कामनायें पूरी करती है । जीवन में कभी भी इस उपासना को तुम मत छोड़ना, निरंतर प्रगति करते जाना ।'

जिज्ञासावश रामदास ने पूछ लिया –'प्रगति के लिए क्या करूँ महाराज ?'

महात्मा का व्यक्तित्व इतना तेजस्वी था कि रामदास उन्हें देखते ही श्रद्धा से अविभूत हो उठे । महात्मा ने उन्हें बहुत देर तक गायत्री उपासना का मर्म रहस्य समझाया और कहा–'यदि तुम सवालक्ष गायत्री का जप कर लो तो तुम्हें गायत्री मंत्र सिद्ध हो जायगा ।'

रामदास ने महात्मा जी की बतायी विधि के अनुसार ही श्रद्धा निष्ठापूर्वक सवालक्ष का गायत्री अनुष्ठान आरंभ किया । साधनाकाल में उन्हें विचित्र अनुभूतियाँ होती थीं । कभी एक विशेष प्रकार की सुगन्ध आने लगती तो कभी विचित्र दृश्य दिखाई देने लगते । जब जप के लिए बैठते तो मन ध्यान में ऐसा लगता था कि पता ही नहीं चलता कब समय बीत गया । कई बार उन्हें ध्यान करते समय ही गायत्री की छवि भी दिखाई देने लगती । ध्यान में मन इतना एकाग्र हो जाता था कि अपने शरीर की कोई सुध–बुध ही नहीं रहती थी ।

इन अनुभूतियों से रामदास के मन में उथल–पुथल तो होती, पर उन्हें बताया जा चुका था कि ऐसी अनुभूतियाँ स्वाभाविक हैं और इस बात का संकेत भी कि साधना ठीक प्रकार से चल रही है । बालक

रामदास प्रातः चार बजे ही उठ जाते और नित्यकर्म से निवृत्त होने के बाद शान्त निर्जन में स्थित उस वटवृक्ष के नीचे जा बैठते, जहाँ प्रायः कोई आता जाता न था। वहीं एकान्त में तीन–चार घण्टे तक वे साधना करते।

अनुष्ठान पूरा होने में एक सप्ताह का समय शेष था कि रामदास जी को सामने ध्यान के समय दिखाई देने वाली छवि साकार हो उठी। वह छवि गायत्री माता की ही थी। आशीर्वाद मुद्रा में दृष्टिगोचर हो रही छवि ने रामदास को इंगित कर कहा–'वत्स अब तुम शेष जप ज्वालामुखी पर जाकर सम्पन्न करो।

रामदास जी ने अपनी आराध्य शक्ति का आदेश स्वीकार किया और ध्यान पूरा होते ही बिना घर की ओर मुख किये ज्वालामुखी की ओर चल दिये। ज्वालामुखी उनके गाँव से सत्तर–अस्सी मील अन्तर पर था। उन्होंने यह यात्रा पैदल ही सम्पन्न की और वहाँ जाकर शेष जप पूरा किया।

गायत्री अनुष्ठान पूरा होने के बाद भी उनकी उपासना का यही क्रम चलता रहा। लौकिक कामनायें क्षीण हो गयीं और आध्यात्मिक चिन्तन में ही चित्त निरत रहने लगा। कहते हैं गायत्री सिद्ध होने के बाद ऐसा कुछ भी नहीं था जो उन्हें प्राप्त न हो। लौकिक कामनायें क्षीण होने के बाद उन्होंने सन्यास धारण कर लिया और केवल एक काठ की लँगोटी पहनने लगे। आप्तकाम हो जाने के बाद उन्हें कई दिव्य शक्तियाँ–अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त हो गयीं। उन्हें दूर दृष्टि प्राप्त थीं, कहीं की भी कोई बात वे बिना बताये ही जान लेते थे। कितने ही लोगों को उन्होंने गायत्री उपासना में प्रवृत्त किया और उन्हें सफलता की मंजिल तक पहुँचाया। उनसे दीक्षा प्राप्त करने के बाद उनके शिष्यों पर कदाचित कोई संकट आता तो वे उसे अनायास ही दूर कर देते थे। उनकी वाक्सिद्धि तो बड़ी विलक्षण थी, जो कह देते वह होकर रहता।

उनके निकटवर्ती लोगों को प्रायः सन्देह बना रहता था कि बाबा कोई गुप्त धन रखते थे। क्योंकि उनके पास जो भी जाता उसे वे बिना भोजन कराये नहीं जाने देते थे। इसलिए उनके पास रहने वाले निकटवर्ती जनों को यह सन्देह होना स्वाभाविक था। गुप्तधन को प्राप्त करने के लिए कुछ लोभी परिवार के लोगों ने उन्हें तीन बार विष भी दिया, परन्तु काठिया बाबा पर उस विष का कोई प्रभाव नहीं हुआ। यही नहीं उन्होने योगबल से यह भी जान लिया था कि विष किसने दिया है ? विष देने वाले को उन्होंने बुलाकर यह बता भी दिया और उसे क्षमा भी कर दिया। यह गायत्री उपासना का ही प्रभाव कहा जाएगा कि जो उनके समक्ष जाता था, श्रद्धा से झुक जाता था। जीवन भर वे गायत्री के माहात्म्य व इस कामधेनु का पयपान कर जीवन का सौभाग्य उदय करने का संदेश जन जन को देते रहें। जिनके मन में कभी संशय उठता हो कि कहीं मंत्र जप से प्रत्यक्ष सिद्धि मिलती है, उनके लिए काठिया बाबा जैसे संतों का जीवन जीता जागता प्रमाण है।

चमत्कार को नमस्कार की परम्परा में तुरन्त लाभ प्राप्त करने के लिए अगणित व्यक्ति ठगे जाते देखे जाते हैं। यदि सही विधि–विधान को अपनाते हुए अपना जीवन गायत्रीमय बना लिया जाय, ब्राह्मणत्व की सच्ची साधना की जाय तो साधक के रोम–रोम से सिद्धियाँ फूट पड़ती हैं। यह तथ्य आज भी उतना ही सही है, जितना कि प्राचीनकाल में कभी था।*

महात्मा आनन्द स्वामी जो आर्य समाज के प्रधान रहे, उच्चकोटिके गायत्री साधक थे। ९२ वर्ष की आयु तक वे देश-विदेश में गायत्री का प्रचार करते रहे। "गायत्री महामंत्र" व "आनन्द गायत्री कथा" जैसी पुस्तकों के लेखक स्वामी जी ने स्वयं के जीवन के बारे में व्यक्त किया है कि वे पढ़ने की दृष्टि से कमजोर थे। बचपन में प्रायः पिताजी की मार उन्हें खानी पड़ती थी क्योंकि पढ़ा हुआ याद नहीं रहता था। एक बार आर्यसमाज के स्वामी नित्यानन्द उनके गाँव आए। उनके आतिथ्य का भार बालक खुशहाल (महात्माजी का पूर्व नाम) को सौंपा गया। उनका दुख देखकर स्वामी नित्यानन्द जी ने उन्हें गायत्री मंत्र लिखकर दिया व कहा कि "तेरे सभी रोगों की औषधि है यह। प्रातः उठकर इसका जप करने से बुद्धि भी कुशाग्र होगी व सब तेरा सम्मान करेंगे।" देखते-देखते वे न केवल पढ़ाई में अव्वल नंबर पर आने लगे, वरन् सारी प्रतिकूलताएँ समाप्त हो गयीं। 'मिलाप' पत्र का प्रकाशन आरंभ कर वे एक सफल पत्रकार बने। समय आने पर वानप्रस्थ लेकर गायत्री महाशक्ति के माहात्म्य के प्रचार-प्रसार तथा आर्यसमाज का संदेश घर घर पहुँचाने में उनने अपना सारा जीवन लगा दिया।

गायत्री माँ की गोद में बैठकर जिसने अमृत का पयपान किया हो, उसका हर तरह कल्याण ही होता है।

परोक्ष जगत के संशोधन हेतु अखण्ड गायत्री जप

परोक्ष जगत इस दृश्यमान जगत का प्राण है । उसका विस्तार, वैभव एवं सामर्थ्य स्रोत इतना बड़ा है कि प्रत्यक्ष को इसका नगण्य सा भाग कहा जा सकता है । जलका जितना प्रवाही स्वरूप दीख पड़ता है, उसकी तुलना में आकाश में भ्रमण करने वाला उसका वाष्प स्वरूप कहीं अधिक है । इसी प्रकार प्रकृति के अन्यान्य पदार्थ जितने पृथ्वी पर ठोस रूप में विद्यमान हैं, उनकी अपेक्षा वायुभूत होकर अनेक गुनी मात्रा में आकाश में उड़ते रहते हैं । सम्पदा के भाण्डागार आकाश में परिभ्रमण करते रहते हैं । परोक्ष विज्ञान के ज्ञाता उसमें से जिस वस्तु को जब जितनी मात्रा में आवश्यकता होती है, खींचकर हस्तगत कर लेते हैं । इन्हीं को सिद्धियाँ कहते हैं ।

सामर्थ्य एवं विस्तार की दृष्टि से सूक्ष्म होने के कारण अदृश्य जगत हर दृष्टि से वरिष्ठ पाया गया है । प्रतिविश्व, प्रतिकणों के रूप में वैज्ञानिक इसी परोक्ष जगत की विवेचना करते पाए जाते हैं। कहते हैं कि दृश्य जगत व इस परोक्ष जगत के मध्य अधिक गहरा आदान–प्रदान चल पड़े तो अपने इसी धरातल पर स्वर्गलोक जैसी परिस्थितियाँ दृष्टिगोचर होने लगें । इसके विपरीत यदि दोनों के बीच संतुलन किसी प्रकार गड़बड़ा जाय तो निश्चित मानना चाहिए कि महाप्रलय अब कभी भी हो सकती है ।

पृथ्वी का सौन्दर्य व सुख–सुविधाओं की प्रचुरता जिस कारण से है, तत्वदर्शी कहते हैं कि उसे कभी भी न विसराया जाना चाहिए । मूलतः विश्व ब्रह्माण्ड की उपलब्ध जानकारी में पृथ्वी को ही सबसे अधिक समुन्नत पाया जाता है व इसका कारण है अन्यान्य ग्रहों उपग्रहों से, ब्रह्माण्ड स्थित अन्यान्य तारकों से इसे मिल रहे संतुलित अनुदान । जिस प्रकार बच्चे का विकास अपने निजके बलबूते नहीं, अभिभावकों–पड़ोसियों व समाज के विभिन्न घटकों के कारण हो पाता है इसी प्रकार पृथ्वी को एक ऐसा सुयोग मिला है कि इस पर अनुदानों की सतत् वर्ष होती रहती है । अन्तर्ग्रही अनुदान यदि पृथ्वी को न मिले होते तो सचमुच यहाँ जीवन न होता । पृथ्वी को प्राणपोषण सूर्य चन्द्रमा से ही नहीं, अनेकानेक नक्षत्रों से उपलब्ध होता है । बादल बरसते दीखते हैं, पर लोक–लोकान्तरों से जो बहुमूल्य सम्पदा बरसती है, उसे कोई जान–समझ इसलिए नहीं पाता कि वह दृश्य न होकर अदृश्य होती है । यह है चेतन जगत की, अदृश्य की, परोक्ष की महिमा ।

परोक्षजगत वस्तुतः चेतना के एक विशाल समुद्र के रूप में हमारे चारों ओर विद्यमान है । ठीक उसी तरह जैसे कि वायुमण्डल व आयनोस्फियर्स की परतें हमारे चारों ओर हैं । अध्यात्म विज्ञानी कहते हैं कि वायुमण्डल की विषाक्तता का परोक्षजगत पर प्रभाव पड़ता है, यह सत्य है किन्तु इससे भी बड़ा सत्य जो पिछले दिनों उभर कर आया है, वह यह कि जन समुदाय की विचारणा, आकांक्षा व चेष्टा जिस स्तर की होती है, उसके अनुरूप अदृश्य वातावरण बनता है और भली बुरी परिस्थितियों के रूप में प्रकट होता है । सूक्ष्मदर्शी कहते हैं कि इन दिनों वायुमण्डल प्रदूषण बढ़ने की तरह चेतनात्मक वातावरण के समुद्र में भी भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट चरित्र के कारण विषाक्तता बेतरह बढ़ चली है । समुद्र की सतह पर तेल फैल जाने पर उस क्षेत्र के जलचर घुटन से संत्रस्त होकर मरते देखे जाते हैं । कुवैत के तेल के कुएँ जलने व अलास्का की खाड़ी में तेल का जहाज डूब जाने पर एक विशाल क्षेत्र में यह हम पिछले दिनों घटित हुआ देख चुके हैं । ठीक इसी प्रकार अदृश्य वातावरण में परोक्ष जगत में आसुरी विषाक्तता की वृद्धि से अनेकानेक संकट एवं विग्रह खड़े होते हैं । इनका त्रास घुटन से भी अधिक कष्ट कर होता है ।

दुश्चिंतन की भरमार से विषाक्त अदृश्य वातावरण और इससे फिर लोकमानस में असुरता निकृष्टता का बढ़ना–प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों ही स्तर पर दैवी प्रकोप जीवधारियों पर बरसना यह एक ऐसा कुचक्र है जो एक बार चल पड़ने पर फिर टूटने का नाम नहीं लेता । लोक चिन्तन व प्रवाह का अदृश्य वातावरण से बड़ा गहरा व अन्योन्याश्रय संबंध है । ऐसे विग्रह व संकट न सुलझते हैं, न घटते हैं, न टलते हैं ।

समान्य स्तर के समाधान प्रयास प्रायः निरर्थक ही चले जाते हैं । आज की प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों स्तर पर छाई विपत्तियों-परिस्थितियों का विश्लेषण इसी प्रकार किया जाना चाहिए ।

दैवी प्रकोपों का-विपत्तियों का स्तर व अनुपात पिछले एक दशक से बढ़ता ही जा रहा है व युगसन्धि के आगामी ९ वर्षों में यह और बढ़ेगा ही , कम नहीं होने वाला । कई बार महाप्रलय निकट होने जैसी आशंका सामने आ खड़ी होती है । ऐसी स्थिति में क्या किया जाय ? क्या भयभीत होकर मरण पर्व की तैयारी आरंभ कर दी जाय ? जनसाधारण इस पर विचार करने में स्वयं को असहाय पाता है । ऐसे में मनीषीगणों का मार्गदर्शन खोजने पर यही निर्देश मिलता है कि एकाकी नहीं, संघबद्ध प्रयासों द्वारा अदृश्य जगत का-परोक्ष का परिशोधन किया जाय । अनीति एवं अनाचार विक्षुब्ध प्रकृति और दैवी प्रकोप स्थायी नहीं अस्थायी प्रतिक्रियाएँ हैं । इन कुचक्रों से संघबद्ध प्रयासों द्वारा नीतिमत्ता और आचरण में पवित्रता का समावेश करते हुए जूझा जाय, संघशक्ति की स्थापना कर सामूहिक धर्मानुष्ठानों से इनका उपचार किया जाय, यह आज के लिए मनीषियों का मार्गदर्शन है । अवतार प्रकरण की सूक्ष्म प्रक्रिया अपने स्थान पर है लेकिन सुधार-प्रयोजन का दूसरा पक्ष मनुष्यकृत है जिसे जाग्रत व्यक्ति आपत्ति धर्म की तरह अपनाते व स्रष्टा के प्रयोजन में हाथ बँटाते हैं । अदृश्य जगत का-सूक्ष्म क्षेत्रों का परिशोधन अदृश्य स्तर की आत्मिक ऊर्जा के सहारे ही बन पड़ना संभव है । अध्यात्म उपचारों-सामूहिक धर्मानुष्ठानों को इसी प्रयोजन के लिए किया जाता है ।

सामूहिक अध्यात्म उपचारों से अदृश्य वातावरण की संशुद्धि के अगणित प्रमाण इतिहास-पुराणों में भरे पड़े हैं । आसुरीसत्ता से भयभीत देवगणों को रक्षा का आश्वासन ऋषि रक्त के संचय से बनी सीता के माध्यम से मिला था । इसी प्रकार देवता जब संयुक्त रूप से प्रजापति के पास पहुँचे, एक स्वर से प्रर्थना की तो महाकाली प्रकट हुईं जिन्होंने असुरों का संहार किया । संघशक्ति की ही यह परिणति थी । जिस समय राम-रावण युद्ध हो रहा था अगणित अयोध्यावासी मौन धर्मानुष्ठानरत थे ताकि अनय परास्त हो, नीति की विजय हो । वस्तुतः शब्द शक्ति के समवेत प्रयोग-उपचारों से वातावरण संशोधन की प्रक्रिया है ।

शब्द शक्ति सूक्ष्म मानवी काया तथा परोक्ष अन्तरिक्षीय जगत को प्रभावित करने वाली एक समर्थ ऊर्जा शक्ति है । यह जीभ से नहीं मन व अंतःकरण से निकलती है । लोकप्रवाह को निकृष्टता से उलट कर उत्कृष्टता की ओर मोड़ने के लिए जो उच्चस्तरीय शब्द सामर्थ्य चाहिए, वह सृष्टि के आरंभ में उच्चारित हुए गायत्री मंत्र में विद्यमान है । गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षर जब एक समय में एक साथ, एक प्रकार से, एक प्रयोजन के लिए ध्वनित होते हैं तो उसमें सामूहिकता की प्राणशक्ति का आश्चर्यजनक समावेश होता है । सृष्टि के आदि से लेकर अद्यावधि गायत्री मंत्र की जितनी आवृत्तियाँ हुई हैं, उतनी और किसी उपासना प्रयोजन में प्रयुक्त होने वाले शब्द-गुच्छक की नहीं । सृष्टि की श्रेष्ठतम विभूति है गायत्री आद्यशक्ति । उसका शब्द गुंथन इस प्रकार हुआ है जो भावार्थ और सामर्थ्य की दृष्टि से विलक्षण है । उसमें व्यक्ति और समाज को सुसम्पन्न सुसंस्कृत एवं समृद्ध बनाने वाले अनेक रहस्यमय तत्वों का समावेश है । विश्व का यह सबसे छोटा, सारगर्भित धर्मशास्त्र, तत्वदर्शन एवं अध्यात्म विज्ञान है । ज्ञान और विज्ञान की दोनों धाराएँ इसमें समान रूप से समाहित हैं । उपासना की दृष्टि से उसके दोनों ही प्रभाव प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं । साधक के स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर का परिशोधन, परिष्कार कर सकने की व्यक्तिगत सामर्थ्य जितनी उसमें है, उतनी कदाचित ही किसी अन्य उपासना आधार से मिल सके । इस मंत्रोच्चारण से जुड़े शब्द प्रवाह से उद्भूत सामर्थ्य अदृश्य जगत में अन्तरिक्ष में भरी विषाक्तता का निराकरण करने की अद्भुत क्षमता रखती है ।

सनातन धर्म के कर्णधार महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने देश के उच्चकोटि के पण्डितों की एक समिति नियुक्त की थी, जिसको यह कार्य सौंपा गया कि वह शास्त्रों के आधार पर यह खोज करे कि स्त्रियों को वेद मंत्रों का अधिकार है या नहीं ! कमेटी ने लम्बे समय तक भारी खोज की और २२ अगस्त १९४६ को उस समिति की रिपोर्ट के आधार पर मालवीय जी ने घोषणा की कि स्त्रियों को भी पुरुषों की ही भाँति वेद पढ़ने का अधिकार है । तब से हिन्दू विश्व विद्यालय में स्त्रियों को भी पुरुषों की भाँति वेद पढ़ाए जाते हैं ।

वस्तुतः साधक स्तर की उत्कृष्ट जीवनचर्या वाले मांत्रिक जब एक साथ मंत्रोच्चार करते हैं तो ऋषिकल्प महामानवों जैसी वातावरण को आमूलचूल बदलने की सामर्थ्य विकसित होने लगती है । तपःपूत उच्चारण ही मंत्र जाप है । सदाशयता को संघबद्ध करने और एक दिशा में चल पड़ने की व्यवस्था बनाने के लिए गायत्री जप का अनुष्ठान एक आदर्श उपचार है । श्रुति ने आदेश भी दिया है –"सहस्र सा कर्मचत्" अर्थात् "हे पुरुषो ! तुम सभी सहस्रों मिलकर देवार्चन करो ।" वस्तुतः ऋग्वेद और सामगान की समस्त ऋचाएँ सामूहिक गान ही तो हैं ।

शान्तिकुंज की युगान्तरीय चेतना ने इस वर्ष को शक्ति साधना वर्ष घोषित कर भारत व विश्व में स्थान–स्थान पर अखण्ड गायत्री जप की श्रंखला चलाने का निश्चय इसी उद्देश्य से किया है । १९७६–७७ में साधना स्वर्ण जयन्ती वर्ष के दौरान एक विराट व्यापक अभियान चला व चौबीस लाख व्यक्तियों ने उसमें भाग लिया था । गायत्री महापुरश्चरण अभियान जो उसके बाद आरंभ हुआ, सतत् चलता रहा । नए परिजन उसमें जुड़े एवं परम पूज्य गुरुदेव की सूक्ष्मीकरण साधना की अवधि में एक समर्थ ब्रह्मास्त्र का रूप उसने ले लिया । सुनियोजित ढंग से एक करोड़ से अधिक साधकों की भागीदारी उस युग संधि महापुरश्चरण में हो रही है जो १९८८ की नवरात्रि से आरंभ हुआ । उसी श्रंखला में इस वर्ष के शक्ति साधना कार्यक्रम हैं । इन कार्यक्रमों में अखण्ड जप सूर्योदय से सूर्यास्त तक एक साथ दो सौ चालीस स्थानों पर चौबीस हजार व्यक्तियों द्वारा प्रतिदिन संपन्न किया जाएगा । यह क्रम प्रस्तुत नवरात्रि से आने वाले आठ माहों तक अनवरत चलता रहेगा । गायत्री जप प्रक्रिया के साथ ध्यान यह किया जाएगा कि प्रचण्ड आत्म ऊर्जा एक लक्ष्य की पूर्ति के लिए एक साथ एक बारगी उत्पन्न की जा रही है । वह संकल्प शक्ति परम पूज्य गुरुदेव की तप ऊर्जा से जुड़कर ऊपर उठती है व अंतरिक्ष की ऊँची परतों पर छतरी की तरह छा जाती है । संयुक्त आत्मशक्ति का यह छाता वातावरण व वायुमण्डल में छाई विषाक्तता को धरित्री पर बरसने नहीं देता, अपितु आसन्न विभीषिका को किसी अविज्ञात क्षेत्र में धकेलकर विपत्तियों से रक्षा करता है । इसी भावना के साथ शब्द शक्ति का यह असाधारण सामूहिक प्रयोग पूरे भारत व विश्व में चलेगा ।

प्रस्तुत साधना को युग परिवर्तन हेतु अनिवार्य परिशोधन तथा युगशक्ति के प्रचण्ड उत्पादन हेतु प्रेरित एक विशिष्ट धर्मानुष्ठान मानकर सविता देवता के उदय के साथ उद्भूत प्राणऊर्जा में अपनी आत्मशक्ति जोड़ते हुए सभी निष्ठावान परिजनों द्वारा अनिवार्य रूप से करना चाहिए । भागीदार व्यक्तियों को इससे मिलने वाले प्रतिफलों के संबंध में बताया जाना चाहिए ताकि अधिक से अधिक भावनाशील इस ब्रह्मास्त्र अनुष्ठान से जुड़ सकें । विभीषिका निवारण, अनीति उन्मूलन तथा परिस्थिति की अनुकूलन हेतु महाकाल द्वारा निर्देशित यह विशिष्ट साधना अनुष्ठान है, जिससे किसी भी आस्थावान गायत्री साधक को वंचित नहीं रहना चाहिए । ✻

स्वामी विद्यारण्य जी, जिन्हें इस युग का व्यास कहा जाता है, गायत्री के महान उपासक थे । दक्षिण भारत के संभ्रान्त परिवार में उत्पन्न विद्यारण्य जी ने युवावस्था में प्रवेश करते ही गायत्री के चौबीस पुरश्चरण आरंभ कर दिए । तपसाधना से अर्जित बल द्वारा उनने उच्चकोटि की अध्यात्म तत्वज्ञान पर अगणित पुस्तकें लिखीं ।

साधनाकाल में विस्थापित स्थिति में भटक रहे दो राजकुमार उनके पास आए । स्वामी जी का आशीर्वाद प्राप्त कर उनने अपना खोया राज्य फिर से प्राप्त कर लिया । जीवन भर वे आदर्श राज्य की तरह विजय नगर का संचालन करते रहे । कभी विजय नगर उतना ही समृद्ध राष्ट्र था । जितना उत्तर में पाटलिपुत्र या हस्तिनापुर ।

सन्यास लेने के बाद गायत्री माँ ने उन्हें दर्शन दिए । पूर्व जन्मों के पातक नष्ट होने के बाद ही साक्षात्कार उन्हें सुलभ हुआ । माँ ने वरदान दिया कि तुम मानव मात्र के कल्याण हेतु सद्ग्रन्थों की रचना करो । वे वेद, ब्राह्मण, दशोपनिषद भाष्य सहित पंचदशी, सर्वदर्शन संग्रह जैसे अनेक ग्रन्थों की रचना करनें में समर्थ हुए ।

आत्मोत्कर्ष का प्राथमिक सोपान—उपासना

मानवीसत्ता का अस्तित्व दो तत्वों के संयोग से है। एक है—पदार्थपरक भौतिक शरीर, तथा दूसरा चेतना-परक अंतःकरण चतुष्टय। जड़ पदार्थों से विनिर्मित स्थूल शरीर में चेतना के स्पन्दन के कारण ही प्राण हैं। मानवी काया के भौतिक पक्ष शरीर को समर्थ, सुविकसित, स्वस्थ, सुन्दर बनाने के लिए अनेकानेक प्रयास किए जाते हैं किन्तु मानवी चेतना के परिष्कार के प्रयास बहुत कम होते दीखते हैं। चेतना के उन्नयन के लिए, मानवी अंतःकरण को पुष्ट व सशक्त बनाने के लिए सर्वश्रेष्ठ माध्यम है-उपासना।

शरीर को अन्न, जल, वनस्पति देकर हम उसकी खुराक पूरी करते हैं पर चेतना का ईंधन क्या है, इस पर बहुत कम का ध्यान जाता है। चेतना को परिपूर्ण पोषण न मिलने पर मनुष्य और पशु दोनों में कोई अन्तर नहीं रह जाता। अंतःचेतना को जीवन्त और प्रखर बनाए रखने का एक ही माध्यम है— उस महत्चेतना— परमात्मसत्ता से संबंध बनाए रखना। इस संबंध को अधिक सघन, अधिक सशक्त बनाना ही ईश्वर उपासना कहलाता है। उपासना के निमित्त जो भी पूजा उपचार किए जाते हैं, उनसे तात्पर्य मात्र इतना है कि चेतना संस्थान को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढालने का व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाय। जो भी साधक बिना किसी उपचार के अथवा कर्मकाण्डों के सहारे अपने चेतना क्षेत्र को जितना समुन्नत बनाने का प्रयास करता है, वह उतना ही ऊँचा उठता, आगे बढ़ता व देवत्व के क्षेत्र में प्रवेश पाने का अधिकारी बनता है।

उपासना आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ने की महायात्रा पूरी करने के निमित्त नित्य की जाती है। आत्मा अर्थात् अन्तःकरण, भाव संस्थान जिसके साथ मान्यताएँ आकांक्षाएँ लिपटी पड़ी हैं। परमात्मा अर्थात् उत्कृष्ट आदर्शवादिता—श्रेष्ठताओं का समुच्चय। परमात्मा कोई व्यक्ति विशेष नहीं, वरन् सृष्टि में जितना भी देव पक्ष है, उसी का समुच्चय है। व्यापक क्षेत्र की सत्प्रवृत्तियों में समग्ररूप को आदर्शवादिता एवं सद्गुणों से भरी पूरी सत्ता को ही परमेश्वर माना जाना चाहिए। यही मनुष्य का इष्ट उपास्य है। इसी के साथ आत्मसात घनिष्टतम, एकाकार होते जाना परमात्मा की उपासना है। यह तथ्य सर्वविदित है कि उपासक का स्तर ऊँचा होगा और उपास्य का स्वरूप वास्तविक होगा तो दोनों की घनिष्टता का प्रभाव इसी रूप में प्रकट होगा कि उपासक उपास्य के तद्रूप बनता चला जाय। तद्रूप बनना एकाकार हो जाना तादात्म्य हो जाना ही उपासना की चरम स्थिति है।

तादात्म्य अर्थात् भक्त और इष्ट भगवान की अन्तःस्थिति का समन्वय एकीकरण। दूसरे शब्दों में ईश्वरीय अनुशासन के अनुरूप जीवनचर्या का निर्धारण। परब्रह्म तो अचिन्त्य है, अगोचर है अगम्य है पर उपासना जिस परमात्मा की कीजाती है। वह आत्मा का ही परिष्कृत रूप है। वेदान्तदर्शन में उसे सोहम शिवोहम, तत्वमसि. अयमात्मा ब्रहम आदि शब्दों में अन्तःचेतना के उच्चस्तरीय विशिष्टताओं से भरे पूरे उत्कृष्टताओं के समुच्चय के रूप में परमात्मा कहकर संबोधित किया गया है। उसके साथ मिलन का, तादात्म्य का स्वरूप तभी बनता है, जब दोनों के मध्य एकता—एकात्मता सामीप्य सघनतम हो। इसके लिए साधक अपने आपको कठपुतली की स्थिति में रखता है और अपने अवयवों में बँधे धागों को बाजीगर के हाथों सौंप देता है। दर्शकों को मंत्र मुग्ध कर देने वाला खेल इस स्थापना के बिना बनता ही नहीं।

उपासना वस्तुतः भावनाओं को परिष्कृत कर जीव को ब्रहम से मिलाने की दिशा में अग्रसर करने वाली, अपनी सत्ता का अस्तित्व भुलाकर महत्सत्ता से एकाकार करने वाली भक्तियोग की प्रक्रिया है, जिसे भगवान कृष्ण ने गीता में सर्वश्रेष्ठ योग कहा है। परमात्मा के साथ आत्मा का संबंध इस माध्यम से जितना निकटवर्ती एवं सुचारु होगा, उसी अनुपात से पारस्परिक आदान—प्रदान का सिलसिला चलेगा और छोटे पक्ष, आत्मा को, जीव को, उसका लाभ मिलेगा। दो तालाबों के बीच नाली खोद दी जाए व उनका संबंध जोड़ दिया जाए तो नीचे वाले तालाब में ऊँचे तालाब का पानी दौड़ने लगता है और देखते—देखते दोनों की

ऊपरी सतह समान हो जाती है । छोटे–छोटे उपकरण बिजली घरों के साथ तार से जुड़ जाने पर अपनी महत्वपूर्ण हलचलें दिखाने में समर्थ हो जाते हैं । बल्ब व पंखे चलने लगते हैं एवं बड़े–बड़े काम उस विद्युत के माध्यम से संपन्न होने लगते हैं , जो मध्यवर्ती तारों से उपकरणों में आती है । संबंध कट जाने पर तो यह यंत्र ठीक दिखाई देते हुए भी निष्क्रिय बन जाते हैं , ठीक इसी तरह ईश्वर इस ब्रह्माण्ड में संव्याप्त वह दिव्य चेतना है जिसका एक छोटा अंश जीव को मिला हुआ है ताकि वह दैनन्दिन जीवनचर्या चला सके । उस ईश्वरीय सत्ता से विशाल जेनरेटर से जो चेतना का उत्पादन करता है, कितनी अधिक मात्रा से विशिष्टता खींची व धारण की जा सकती है इसी प्रयास पुरुषार्थ को उपासना कहा जाता है ।

उपासना का अर्थ है समीप बैठना । "उप" उपसर्ग के साथ "आस्" धातु से उपासना शब्द बना है । पर "पास बैठना" इस शाब्दिक अर्थ से ही "उपासना " का पूरा भाव प्रकाशित नहीं होता वस्तुतः भावार्थ है किसी के पास बैठकर उससे तादात्म्यता–संबंध स्थापित कर लेना । किसके साथ बैठकर ? अपने उपास्य देव–श्रेष्ठता से अभिपूरित परमात्मसत्ता के समीप बैठकर उनके श्रेष्ठ गुणों को अपने अंदर ले लेना–परमात्मा की अनुकम्पा का भागीदार शेयर होल्डर साझीदार बन जाना । तैत्तिरीय उपनिषद में ऋषि कहते हैं यानि अस्मांक सुचरितानि । तानि त्वया उपास्यानि नो इतराणि (१/११/२) अर्थात् हे स्नातक तुमने हमारे अंदर जो उत्तमगुण देखे हैं, उन्हीं की उपासना करो, दूसरों की नहीं ।" यह वस्तुतः उपासना है, जिस में उपास्य देव के गुणों का ही बार बार ध्यान किया जाता है व वैसा ही बनने का प्रयास किया जाता है ।

आग के पास बैठने से शरीर गर्म हो जाता है । शक्तिशाली तत्वों के जितना निकट पहुँचते हैं, उतना ही उनकी विशिष्टता का लाभ मिलता है । गीली लकड़ी आग के समीप पहुँचते–पहुँचते अपनी नमी गँवाती और उस ऊर्जा से अनुप्राणित होती चली जाती है । जब वह अति निकट पहुँचती है तो फिर आग और ईंधन एक स्वरूप हो जाते हैं । चमकता हुआ लाल प्रदीप्त अंगारा ही शेष रह जाता है । यह है उपासना का प्रतिफल । साधक को भी ऐसा ही भाव समर्पण करके ईश्वरीय अनुशासन के साथ अपने आपको एक रूप बनाना पड़ता है । चन्दन वृक्ष के समीप उगे झाड़ झंखाड़ भी सुगन्धित हो जाते हैं । पारस को छूकर अनगढ़ सा लौह खण्ड भी सुवर्ण बन जाता है । चुम्बक से कुछ समय लोहा सटा रहे तो वह भी चुम्बक की विशेषताओं से युक्त हो जाता है । गंदा नाला भी जब पवित्र गंगा में मिल जाता है तो अपना पुराना अस्तित्व खोकर पुण्य तोया पापनाशिनी गंगा नाम से ही संबोधित किया जाता है । पानी दूध में मिलकर फिर उसी भाव बिकता है, जितना दुध । ये अगणित उदाहरण यही बताते हैं कि भक्त और भगवान की समीपता की परिणति क्या होती है व इस एकरूपता–तद्रूपता का स्तर क्या होना चाहिए ?

उपासना वस्तुतः एक मंगलमय सुयोग है जिसके द्वारा छोटा पक्ष बड़े पक्ष का सहारा लेकर लाभान्वित हो सकता है । एक समर्थ वृक्ष का आश्रय पाकर बेल

य एतां वेद गायत्री पुण्यां सर्व गुणान्विताम् । तत्वेन भारत श्रेष्ठ ! सलोक न प्रणाश्यति ।।

–महाभारत

"जो इस पवित्र सर्वगुण सम्पन्न गायत्री तत्व को जानता है, उसकी इस लोक में अवनति नहीं होती।"

उससे लिपट कर आसमान चूमने लगती है । यदि उसे वैसा सुयोग न मिला होता अथवा उसने वैसा साहस न जुटाया होता तो वह अपनी पतली कमर के कारण मात्र जमीन पर फैल सकती थी पर ऊपर नहीं चढ़ सकती थी । पोले बाँस का निरर्थक समझा जाने वाला टुकड़ा जब वादक के हाथों से तादात्म्य स्थापित करता है तो बांसुरीवादन का ऐसा आनन्द आता है, जिसे सुनकर साँप लहराने और हिरन मंत्र मुग्ध होने लगते हैं । पतले कागज के टुकड़े से बनी पतंग आकाश में दौड़ती दिखाई देती है क्योंकि उसकी डोर का सिरा किसी उड़ाने वाले के हाथ में रहता है । यह संबंध शिथिल पड़ने पर या डोर टूटने पर सारा खेल खत्म हो जाता है और पतंग जमीन पर आ गिरती है । यह उदाहरण बताते हैं कि यदि आत्मा को परमात्मा के साथ सघनतापूर्वक जुड़ जाने का अवसर मिल सके तो उसकी स्थिति सामान्य नहीं रहती । ऐसे मानव देखते–देखते कहीं से कहीं जा पहुँचते हैं । जिन जिनने भी अपने अन्तराल को निकृष्टता से विरत करके

ईश्वरीय महानता के साथ जोड़ा है, वे कुछ से कुछ बन गए ।

सृष्टि के आदि से अद्यावधि सच्चे भक्तों में से प्रत्येक को ईश्वर के शरणागत होकर उनकी उपासना का अवलम्बन लेना पड़ा है । आत्म समर्पण का साहस जुटाना पड़ा है । पत्नी पति को आत्म समर्पण करती है अर्थात् उसकी मर्जी पर चलने के लिए अपनी मनोभूमि एवं क्रिया पद्धति को मोड़ती चली जाती है व उसी अनुपात में वह पति के मानव वैभव की वंश, पात्र, यश की उत्तराधिकारिणी ही नहीं, अर्धांगिनी भी बन जाती है । भक्त जब भगवान के अनुरूप बनता चला जाता है तो अन्ततः नर–नारायण , पुरुष पुरुषोत्तम, भक्त–भगवान की एकरूपता का स्वयं प्रमाण बनता है । दादू , मीरा, रैदास, कबीर, शबरी, तुलसी, नामदेव, रामकृष्ण एवं हनुमान ये सभी उदाहरण हैं भक्त के निष्काम समर्पण के परमात्मसत्ता के प्रति । इन सभी ने सही अर्थों में उपासना की तो देवात्मा बन गए व परमात्मा स्तर की क्षमताएँ उनमें आ गयीं । इन्हीं को तो ऋद्धि–सिद्धियाँ कहते हैं ।

अस्तिकता की भावना को परिपुष्ट करने के लिए दैवी अनुदानों से जीवसत्ता को समर्थ समुन्नत बनाने के लिए हर धार्मिक व्यक्ति को निजी जीवन में उपासना क्रम को सम्मिलित रखना चाहिए । उपासना किनकी व किस पद्धति से की जाय, इस पर मतभेद से तो विग्रह बढ़ेंगे व संकट उठा खड़े होंगे । अगला युग एकता का है । वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को बनाए रखने के लिए विश्व की सभी प्रचलित उपासनाओं के सारतत्व जो बीज रूप में गायत्री मंत्र के रूप में विद्यमान हैं, को ही अंगीकार किया जाना चाहिए । इस मंत्र के चौबीस अक्षरों में नवयुग का संविधान, समग्र धर्म शास्त्र समाया हुआ है । व्यक्ति के सर्वांगीण उत्कर्ष और समाज की व्यापक सुव्यवस्था के लिए इससे श्रेष्ठ आचार संहिता कोई नहीं ।

आने वाला समय बड़े व्यापक परिवर्तन लेकर आ रहा है । उस समय भौतिक पुरुषार्थ से कहीं अधिक आध्यात्मिक पुरुषार्थ की– शक्ति की आवश्यकता पड़ेगी । इसके लिए गायत्री उपासना का ही अवलम्बन लिया जाना चाहिए । *

आज से कोई ९० वर्ष पूर्व रामटेकरी (उ.प्र.) के समीप के जंगलों में हरीहर बाबा नामक एक प्रसिद्ध गायत्री साधक रहा करते थे । जिस वन में व गुफा में वे रहते थे, वहाँ आसपास वन्य पशु बहुत थे पर बाबा के दर्शनों हेतु आने वालों को वे जरा भी नहीं छेड़ते थे । जब भी कोई कष्ट कठिनाई में फँसा व्यक्ति आता था तो वे उसे गायत्री माता की शरण में जाने के लिए कहते थे । अपनी आयु के संबंध में उनने किसी को बताया नहीं पर लोग ये बताते हैं कि संत कबीर के समय से वे वहाँ रह रहे थे ।

उनकी प्रत्यक्ष सिद्धि के बारे में लोगों को थोड़ी बहुत ही जानकारी थी । उनकी गुफा से चार मील दूर तक कोई जलाशय नहीं था पर उनके घड़े में सदा शीतल व मधुर जल भरा रहता था जो उनके लिए दर्शनार्थियों के लिए व प्यासे वन्य पशुओं के लिए सदा भरा रहता था । उस जंगल में फलों का कोई वृक्ष नहीं था, पर बाबा अपनी झोंपड़ी से सदा फलों का प्रसाद लोगों को देते । उनकी गुफा से चमेली के फूलों की सुगन्ध सदैव आती रहती थी । अनेकों नेत्रहीनों को उनने दृष्टि दी । कुष्ठ रोगी भी उनकी कृपा से ठीक हुए । उनने विधिवत् किसी को दीक्षा नहीं दी , पर उन्हें गुरु मानकर गायत्री उपासना करने वालों की संख्या बड़ी है ।

तपश्चर्या की असाधारण परिणतियाँ

शास्त्रों में गायत्री को परम तप कहा गया है । स्कन्दपुराण में उल्लेख है–

"गायत्र्येव तपोयोगः साधनं ध्यानमुच्यते ।
सिद्धानां सामता माता नातः किंचिद वृहत्तरम्"।।

अर्थात्–गायत्री ही तप है । गायत्री ही योग है । गायत्री ही सबसे बड़ा ध्यान और साधन है । इससे बढ़कर सिद्धिदायक साधन–तप और कोई नहीं है ।

गायत्री को पापनाशिनी, मोक्षदायिनी और कल्याणकारी कहा गया है । इस महाशक्ति की उपासना वस्तुतः एक ऐसी तपश्चर्या है जिसे गृहस्थ, विरागी, स्त्री और पुरुष, बालक तथा वृद्ध समान सुविधा से कर सकते हैं । तप ही एक मात्र साधन है जो नरक रूपी समुद्र में गिरते हुए मनुष्य को बचाता , पाप कर्मों से उबारता और आत्मशक्ति बढ़ाता है । यह आत्मशक्ति ही संसार की वह सर्वोपरि वस्तु है जिसके द्वारा मनुष्य इच्छानुकूल पदार्थ, मनोवांछित परिस्थिति और अक्षय शान्ति प्राप्त कर सकता है । दिव्य शक्तियों की सहायता और ईश्वरीय कृपा को उपलब्ध करना भी गायत्री तप द्वारा उपार्जित आत्म शक्ति पर ही निर्भर है ।

कथा है कि–अनादि काल में जब नीलकमल में ब्रह्माजी उत्पन्न हुए तो वे अकेले थे । उनने बहुत सोचा कि मैं क्या हूँ ? क्यों हूँ ? यह सब क्या है ? पर कोई बात समझ में नहीं आती थी । जब वे कुछ भी न सोच सके और बहुत हैरान हो गये तब आकाशवाणी हुई कि "तप करो ।" ब्रह्माजी ने दीर्घकालीन तप किया, तब उन्हें आत्मज्ञान हुआ और अपना उद्देश्य तथा कार्यक्रम जाना । उन्हें गायत्री प्राप्त हुई , जिसकी सहायता से उन्होंने चारों वेद रचे । उन्हें सावित्री प्राप्त हुई जिसकी सहायता से उन्होंने सृष्टि की रचना की । इसी प्रकार देवताओं और दानवों द्वारा समुद्र मंथन के घोर तप की कथा आती है जिसकी उष्णता से चौदह रत्न निकले और श्रीहीन वसुन्धरा में जीवों के जीवन धारण करने के लिए आकर्षण का केन्द्र बने । तात्पर्य यह है कि ज्ञान और विज्ञान का , चेतन और जड़ का मूल कारण तप है । तप के बिना किसी भी वस्तु, विचार तत्व या गुण का होना संभव न था ।

गायत्री–तपश्चर्याकी शक्ति असाधारण–असामान्य है । स्वयम्भू मनु और शतरूपा रानी ने इसी का आश्रय लेकर भगवान को अपनी गोदी में खिलाने की असंभव इच्छा को संभव बना लिया । दशरथ और कौशल्या ने तप से ही राम को गोदी में खिलाने के सौभाग्य का रसास्वादन किया । नन्द और यशोदा, देवकी और वासुदेव ने भी पूर्वजन्मों में ऐसी ही तपस्या करके भगवान के भी माता–पिता बनने का अद्भुत अवसर पाया था ।

अवतारी आत्माओं को भी तप करना पड़ा है, क्योंकि बिना तप के उनका शरीर भी ब्रह्मा जी की भाँति ही अशक्त रह जाता । राम का विश्वामित्र के आश्रम में जाना और चौदह वर्ष तक वनवास में तपस्वी जीवन बिताना सर्वविदित है । लक्ष्मण की चौदह वर्ष की गायत्री साधना प्रसिद्ध है । सीता का वनवास में अशोक वाटिका और अन्त में वाल्मीकि आश्रम में तप करना सर्वविदित है । भरत ने चौदह वर्ष तक जो तप किया था उसी का प्रताप था कि वे बाण पर बिठाकर हनुमान को लंका पहुँचा सके ।

शंकर जी तो साक्षात् योगिराज ही हैं । योग और तप ही उनका प्रधान कार्य है । उनकी वेश–भूषा का अनुकरण करके योगियों की एक परम्परा बन गयी है । शिव की अनेक लम्बी समाधियों का वर्णन ग्रन्थों में मिलता है । ऐसे अवधूत को पुनर्विवाह के लिए तैयार करना कोई साधारण काम न था, परन्तु पार्वती के उग्र तप ने इस असाधारण को भी साधारण बना दिया । चौबीस अवतारों की कथायें यह बताती हैं कि उनमें से हरेक ने तप किया है । यद्यपि उनकी आत्मापूर्ण थी, परन्तु स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों में आवश्यक क्षमता उत्पन्न करने के लिए भी तप करना आवश्यक था । देवता भी तप के प्रभाव से ही देवत्व के अधिकारी रहते हैं । इन्द्र को इन्द्र पदवी उनकी तपस्या के कारण ही थी । अतः तप देवत्व को जन्म देता है, यह सत्य है ।

धरती के देवदूतों में से सभी ने इसी मार्ग का अनुसरण किया है । भगवान बुद्ध, भगवान महावीर, ईसामसीह, मोहम्मद साहब, जरथुस्त्र सुकरात, शंकराचार्य माधवाचार्य, अरविंद, महर्षि रमण गाँधी, बिनोवा, रामकृष्ण परमहंस, रामतीर्थ आदि ने जो तप किये हैं, वे इतिहास के पाठकों को भली प्रकार विदित हैं । इनमें से प्रत्येक ने अपने–अपने ढंग से आत्मशुद्धि और दिव्य शक्ति प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य व्रत, उपवास, तितीक्षा, त्याग, आराधना आदि तपश्चर्याओं का अवलम्बन लिया था । उसी के कारण उनका चरित्र, व्यक्तित्व एवं प्रभाव बढ़ा और उसी के कारण वे अपने विचारों की छाप अपने

अनुयायियों पर डाल सके । संसार के प्रत्येक देश में वे ही व्यक्ति पूजनीय माने गये हैं, जिन्होंने अपनी आत्मा को तपाकर निर्मल एवं प्रकाशवान् बनाया है ।

यों तो तप के अनेक मार्ग हैं । साधक अनेक पद्धतियों से अपनी साधनायें करते हैं और उनसे यथा संभव लाभ भी उठाते हैं, परन्तु अध्यात्म विज्ञान के सूक्ष्मदर्शी ऋषियों ने अपने योगबल से यह देख लिया था कि गायत्री महाशक्ति की सहायता के बिना कोई भी तप अधिक फलदायी नहीं हो सकता । इसीलिए उपासना पद्धति में इस महामंत्र को सबसे अधिक महत्व दिया गया है । इतिहास पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि यहाँ इसी महाविज्ञान के आधार पर आत्मकल्याण के महान अभियान किये जाते रहे हैं । प्रायः सभी ऋषियों ने इस राजमार्ग को अपनाया है । ऋषि–महर्षियों में जो विशेषतायें थीं, उनमें उनकी तपस्या ही एक मात्र कारण थी । विश्वामित्र, वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, अत्रि, भारद्वाज, गौतम, कपिल, कणाद, पतंजलि, व्यास, वाल्मीकि, च्यवन, शुकदेव, नारद, दुर्वासा, आदि ऋषियों के जीवन वृतांत पर विहंगावलोकन किया जाय, तो सहज ही पता चल जाता है कि उनकी महानता का, उनके अद्भुत एवं महान कार्यों का कारण उनका गायत्री तप ही था ।

महर्षि विश्वामित्र द्वारा अपने तपोबल की शक्ति से नयी सृष्टि का बनाया जाना और त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजने की कथा प्रसिद्ध है । वसिष्ठ की कामधेनु–(गायत्री) को लेने के लिए जब राजा विश्वामित्र गये थे तब वसिष्ठ जी ने निरस्त्र होते हुए भी राजा की भारी सेना को परास्त कर दिया था । इससे प्रभावित होकर विश्वामित्र ने भी गायत्री की महान तपश्चर्या की और अंततः ब्रह्मर्षि पद पर आरूढ़ हुए । भगीरथ इसी तप के आधार पर गंगाजी को स्वर्ग से धरती पर लाये थे । अम्बरीष की गायत्री साधना से अर्जित शक्ति जब दुर्वासा ऋषि के पीछे मृत्यु चक्र बनकर दौड़ी तो अन्त में दुर्वासा को अम्बरीष की शरण लेकर ही प्राण बचाने पड़े थे । इस प्रकार की अगणित कथायें ऐसी हैं जिनसे प्रकट है कि गायत्री तप के द्वारा दिव्य विलक्षण शक्तियाँ तपस्वी में उत्पन्न होती हैं ।

तप शक्ति उत्पादन के विशुद्ध विज्ञान द्वारा ही तपस्वी को निश्चित रूप से आत्मशक्ति मिलती तथा देवताओं और ऋषियों के अनुदान–वरदान बरसते हैं । इतिहास साक्षी है कि तपस्वियों को देवताओं–ऋषियों के वरदान से अनेक प्रकार की दिव्य शक्तियाँ प्राप्त हुई और उस कृपा के कारण वे असाधारण लाभों से लाभान्वित हुए हैं , तप के द्वारा सांसारिक सुख सौभाग्यों से परिपूर्ण बनने वालों के उदाहरण भी कम नहीं हैं । ध्रुव ने तप करके राज्य पाया था । राजा दिलीप के संतान नहीं थी । उनने पत्नी समेत महर्षि वसिष्ठ के आदेशनुसार नन्दिनी (गायत्री) की उपासना की ओर महाप्रतापी पुत्र रत्न पाया । योगिराज मत्स्येन्द्रनाथ की भस्म विभूति के द्वारा महायोगी गोरखनाथ का जन्म हुआ था । अंजनी ने कठिन तप करके बजरंगी हनुमान का प्रसव किया था । कर्ण को गायत्री की सविता साधना के कारण ही नित्य सौ मन स्वर्ण प्राप्त होने का वरदान था जिसे वह दान कर देते थे । परशुराम अकेले होते हुए भी पृथ्वी के समस्त राजाओं को सेना समेत संहार करने में सफल हुए थे । धौम्यऋषि के आशीर्वाद मात्र से आरुणि को समस्त विद्यायें प्राप्त हो गयी थीं । दधीचिऋषि की हड्डियों में इतना प्रचण्ड तेज आ गया था कि उन्हीं के द्वारा बना हुआ वज्र वृत्रासुर को मारने में सफल हुआ ।

पुरुषों के समान ही महिलायें भी तप करने की पूर्ण अधिकारिणी हैं । गायत्री माता की गोदी में उसके पुत्र और पुत्री समान रूप से क्रीड़ा कल्लोल कर सकते हैं और समान रूप से पयःपान कर सकते हैं । इतिहास–पुराणों को पढ़कर यह भली प्रकार जाना जा सकता है कि प्राचीनकाल में नारियाँ भी पुरुषों के समान ही तपश्चर्या के क्षेत्र में बढ़ी हुई थीं । पार्वती जी का तप प्रसिद्ध है । गार्गी, मैत्रेयी, अनसूया, अरुन्धती, अहिल्या, मदालसा, गांधारी, देवयानी, द्रौपदी, गौतमी, अपाला, दिति, अदिति, शची, सुकन्या, घोषा, लोपामुद्रा आदि अगणित महिलायें तपश्चर्या एवं आत्मशक्ति में पुरुष तपस्वियों से किसी प्रकार कम न थीं । अनसूया के तपबल ने तो ब्रह्मा, विष्णु , महेश तक को ६–६ माह के शिशु बना दिया था । सती शाण्डिली के तपोबल ने सूर्य के रथ को रोक दिया था । सावित्री ने तपबल के आधार पर अपने पति को यमराज से छुड़ा लिया था । कुन्ती ने कुमारी अवस्था में गायत्री मंत्र द्वारा सविता के भर्ग को आकर्षित किया था और उसी के द्वारा महाप्रतापी कर्ण का जन्म हुआ था ।

यद्यपि तपश्चर्या के अन्य अनेकों मार्ग हैं, पर उन सभी में सूक्ष्म रूप से गायत्री का ही विज्ञान सम्बद्ध है । गायत्री के द्वारा ही अधिकांश तपस्वी तप करते हैं, क्योंकि यह रास्ता सबसे सरल, सर्वसुलभ, हानि रहित, शीघ्रफलदायी तथा नर–नारी, बाल –वृद्ध सभी के लिए सुसाध्य है । वे मनुष्य बड़भागी हैं जो गायत्री उपासना को अपनाते और धर्म, अर्थ काम, मोक्ष इन चारों पदार्थों को प्राप्त करते हैं । *

साकार एवं निराकार उपासना की पृष्ठभूमि

आत्मोत्कर्ष का लक्ष्य यह है कि आत्मा का हर दृष्टि से विकास विस्तार परमात्मा के समतुल्य हो । बूँद समुद्र में मिले । छोटा निर्झर गंगा में अपने आपको समर्पित करके अपनी लघुता को महानता में विकसित करे । ईश्वर व्यापक है–जीव सीमित । ईश्वर दिव्यता का समुद्र है–जीव पर मलिनता की परत छायी हुई है । अतः उस परत को हटाना और ईश्वर की दिव्यता का साक्षात्कार आत्मा को कराना ही समीपता–सायुज्यता–तद्रूपता अथवा दूसरे शब्दों में उपासना है ।

ईश्वर इतना विराट है कि उसके समग्र स्वरूप एवं क्रियाकलापों को न तो उपकरणों के माध्यम से प्रयोगशाला में प्रत्यक्ष किया जा सकता है और न मानवी बुद्धि अपनी समीपता के कारण उस असीम की विवेचना कर सकती है ।"अणोरणीयान महती महीयान" की व्याख्या विवेचना तो नहीं पर अन्तरात्मा के मर्म स्थल में अनुभूति हो सकती है । इस अनुभूति के दो आधार हैं–एक साकार दूसरा निराकार उपासना । साकार परमेश्वर यह विश्व ब्रह्माण्ड है । शिवलिंग और शालिग्राम की गोल मटोल प्रतिमाएँ इसी के प्रतीक रूप में गढ़ी गई हैं । भगवान राम ने कौशल्या और काकभुशुंडि को–भगवान कृष्ण ने अर्जुन और यशोदा को यही अपना विराट रूप दिखाया था । साकार ईश्वर की उपासना लोकमंगल के सत्प्रयोजनों में संलग्न रहकर की जा सकती है ।

निराकार ईश्वर भाव सम्वेदनाओं और उत्कृष्ट विचारणाओं में परिलक्षित होता है , उन्हीं की प्रेरणा से आदर्श कर्तृत्व बन पड़ता है । अंतरंग जीवन में निराकार ईश्वर की प्रतिष्ठापना करनी होती है और बहिरंग क्रियाकलाप में विराट विश्व के लिए अपने साधनों को समर्पित करना होता है ।

साकार उपासना में इष्ट के समीप अति समीप होने और उनके साथ लिपट जाने, उच्चस्तरीय प्रेम के आदान–प्रदान की गहरी कल्पना की जाती है । इसमें भगवान और जीव के बीच माता–पुत्र पति पत्नि, सखा–सहोदर, स्वामी सेवक जैसा कोई भी सम्बन्ध स्वीकार किया जाता है इससे आत्मीयता को अधिकाधिक घनिष्ट बनाने में सहायता मिलती है । नवधाभक्ति में ऐसे ही आदान–प्रदान की वस्तुपरक अथवा क्रियापरक कल्पना की गई है । मूलतः लक्ष्य एक ही है कि भक्त और भगवान के बीच सघन आत्मीयता की अनुभूति करने वाला आदान–प्रदान चलना चाहिए । भक्त अपनी अहंता को क्रिया, विचारणा, भावना रूपी सम्पति को भगवान के चरणों पर अर्पित करते हुए सोचता है, यह सारा वैभव उसी दिव्य सत्ता की धरोहर है ।

साकार उपासना में नर और नारी की दोनों ही आकृतियों में परब्रह्म की प्रतिमा बनाई जाती रही है । दोनों में पवित्रता, कोमलता, उदारता, सेवा, समर्पण, स्नेह, वात्सल्य जैसी भावनाओं के आधार पर देखना हो तो नारी की गरिमा अधिक बैठती है । नारी दानी है और नर उपकृत । ईश्वर की प्रतिमा को किस रूप में माना जाय ? इस दृष्टि से विवेक का झुकाव नारी पक्ष में जाता है । अधिक अच्छा यही है परब्रह्म को नारी रूप में–मातृसत्ता का प्रतीक मानकर चला जाय ।

गायत्री माता के रूप में परब्रह्म की स्थापना सर्वोपयोगी है । उसके सान्निध्य में माता की गोदी में खेलने वाले बालक को मिलने वाले वात्सल्य एवं पयः पान जैसे स्थूल–सूक्ष्म लाभों की अनुभूति होती है । सोलह वर्ष की सुन्दर कन्या में मातृसत्ता के दर्शन करने से नारी के प्रति अचिन्त्य चिंतन का जो प्रवाह इन दिनों चल पड़ा है उसे रोकने और भाव भरी दिव्य श्रद्धा की प्रतिमा उसे मानने की, जन चेतना उत्पन्न करने की दृष्टि से भी यह स्थापना अतीव उपयोगी है । गायत्री माता का वाहन हंस माना गया है । हंस अर्थात् स्वच्छ धवल कलेवर नीर क्षीर विवेक का प्रतिनिधि, मोती चुगने या लंघन करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ । वास्तव में यह परिभाषा आध्यात्मिक हंस की है । संकेत यह है कि परमात्मा की दिव्य शक्ति को धारण करने के लिए साधक को अपनी उत्कृष्टता हंस स्तर की विकसित करनी चाहिए । उसे क्रियात्मक स्थूल जीवन में धर्मपरायण विचारात्मक सूक्ष्म जीवन में विवेकवान और आस्थापरक अन्तः प्रवेश में सद्भाव सम्पन्न होना चाहिए । गायत्री माता के एक हाथ में

पुस्तक दूसरे में जल कमण्डलु होने के पीछे भी सद्ज्ञान और शान्तिदायक सत्कर्मों की धारणा का संकेत है ।

उपासना सार्वभौम सार्वजनीन बन सके इसके लिए आवश्यक है निराकार उपासना को भी मान्यता मिले । इस दृष्टिकोण से सविता देवता की उपासना एवं ज्ञान ज्योति दिव्य ज्योति की उपासना सार्वभौमिक हो सकती है , निराकारवादी अन्तर्मुख होकर दिव्य–ज्योति के रूप में परमात्म सत्ता का दर्शन करते हैं और इसे सूर्य का प्रतीक मानते हैं । आध्यात्म साधना में अग्निपिंड सूर्य की प्रतिमा भर माना गया है । उसकी मूल सत्ता दिव्य ज्ञान कही गई है । निराकार 'प्रज्ञा' तत्व का साकार रूप 'सविता' है । सविता अर्थात् सद्ज्ञान को अन्तःकरण में आलोकित करने वाला प्रकाशवान परब्रह्म । सूर्य की उपासना करते हुए यह अनुभूति विकसित की जाती है कि वह आलोक साधक के शरीर मन और अन्तरात्मा में स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरों में सक्रियता सद्ज्ञान एवं सद्भाव बनकर प्रकाशवान हो रहा है । इस प्रकार सूर्य को न केवल आलोक दर्शन की दिव्य प्रक्रिया मात्र मानकर बात समाप्त कर दी जाती है वरन् उसकी आभा से आत्मसत्ता को पूरी तरह प्रकाशित एवं प्रभावित भी देखा जाता है । निराकार उपासक के लिए भी भगवान व्यक्ति नहीं शक्ति बन जाता है और उसे स्थान विशेष पर प्रतिष्ठित नहीं वरन् व्यापकता के सहित अनुभूति में उतारा जाता है ।

साकार अथवा निराकार मान्यताओं की महत्ताओं की महत्ता अपने स्थान पर है किन्तु वास्तविक महत्ता उपासना रूपी उस राजमार्ग की है जिसमें ईश्वर के साथ एकाकार हो जाने समुद्र में बूँद का अस्तित्व मिला देने एवं पतंगे की तरह दीपक की लौ में प्राण न्यौछावर करने की आकुलता एवं श्रेष्ठ बनने का विश्वास मुख्य होता है । दृढ़ विश्वास एवं आकुलता तड़पन वह आकर्षण है जो हमें इष्ट तक ले जाने एवं तद्रूप बना देने में समर्थ है । कहा जाता है कि भृंग नाम का कीड़ा झींगुर पकड़ लाता है और उसके सामने निरन्तर गुंजन करता रहता है । उस गुंजन को सुनने और छवि देखते रहने में झींगुर की मन स्थिति भृंग जैसी हो जाती है वह अपने को भृंग समझने लगता है अस्तु धीरे–धीरे उसका शरीर ही भृंग रूप में बदल जाता है । रामकृष्ण परमहंस जब स्त्रैण साधना कर रहे थे तो उनकी मान्यताओं एवं भावनाओं के आधार पर स्त्रियोचित गुण ही नहीं शारीरिक लक्षणों का भी प्रकटीकरण होने लगा था । झाड़ी का भूत और रस्सी का साँप मान्यताओं पर ही आधारित है । जिस चिकित्सक पर विश्वास होता है उसकी झाड़फूँक और राख भभूत भी सँजीवनी बूटी का काम करती है जिस पर सन्देह हो उस सुयोग्य चिकित्सक की उपयोगी दवा भी काम नहीं करती है ।

ईशं उपासना वह आकर्षण एवं वह चुम्बकत्व है जो ईश्वरीय विभूतियों ऋद्धि–सिद्धियों दैवी गुणों एवं महानता को खींच ले आती है । उपासना वह प्रक्रिया है जिसमें शरीर रूप रेडियो को ईश्वर की अनेक शक्तियों के साथ 'ट्यून' करना होता है जिसके द्वारा ईश्वर के महासागर में से विपुल वैभव में से हम अपनी आवश्यकताएँ एवं सम्पदायें प्राप्त कर सकते हैं । उपासना में ईश्वरीय सान्निध्य की कल्पना ही नहीं अनुभूति भी अपेक्षित होती है । भावनिष्ठा को कार्यान्वित होते देखकर ही ऐसी मनःस्थिति बनती है । इसलिए यह सोचना होता है कि परमेश्वर प्रत्यक्ष ही सचमुच ही सामने विराजमान है और उनकी किसी

महर्षि विश्वामित्र ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के ऋषि हैं । गायत्री मंत्र का प्रथम दर्शन वैदिक युग के क्रांतिकाल में ऐतिहासिक महर्षि विश्वामित्र के माध्यम से ही हुआ है । उनका जीवन देखने पर पता चलता है कि वे कर्म के अनुसार आर्य जाति का अस्तित्व मानते थे और यह विश्वास रखते थे । आर्य धर्म का पालन और गायत्री जप करके दस्यु-दुर्दान्त व्यक्ति भी आर्यधर्मी हो सकता है ।

महर्षि वसिष्ठ ने व्यवस्था दी कि विश्वामित्र का जन्म क्षत्रिय कुल में हुआ है । अतः वे तपस्या करने पर भी केवल राजर्षि हो सकते हैं । ब्रह्मर्षि कहलाने के अधिकारी नहीं हैं । विश्वामित्र ने इन सब रूढ़ियों का विरोध किया । वसिष्ठ का एक अनुयायी त्रिशंकु जब निराश होकर सदेह स्वर्ग जाने की इच्छा लेकर उनके पास आया तो उनने नरक व स्वर्ग की व्याख्या कर उसे समझाया कि नरक और स्वर्ग सब इसी जीवन में हैं । यद्यपि आगे चलकर त्रिशंकु का पतन हुआ किन्तु इतिहास साक्षी है कि वह विश्वामित्र की कृपा से ही मुक्त हो कर स्वर्ग का अधिकारी एक बार बना था ।

उनकी सभी परीक्षाओं के अंत तक गायत्री साधना ने उनके ब्रह्मवर्चस् की रक्षा की व अन्त में मुनि वसिष्ठ ने भी कर्म के अनुसार जाति का अस्तित्व स्वीकार करके उन्हें "ब्रह्मर्षि" कहकर संबोधित किया था ।

जीवित व्यक्ति के उपस्थित होने पर की जाने जैसी अभ्यर्थना की जा रही है । यदि उतने समय शरीर रहित भौतिक प्रभावों से मुक्त ज्योतिर्मय आत्मा ही ध्यान में है और उसमें महाज्योति के साथ समन्वित हो जाने की दीप पतंग जैसी आकांक्षा उठ रही है, तो समझना चाहिए कि उपासना का स्वरूप अपना लिया गया और उससे अभीष्ट उद्देश्य पूरा हो सकने की सम्भावना बन रही है ।

उपासना फलीभूत तब होती है जब इष्ट निर्धारण स्पष्ट होता है । प्रगति के किस बिन्दु तक पहुँचना है, इसका सुदृढ़ निश्चय होना आवश्यक है । भव्य भवन बनाने के लिए एक श्रेष्ठ आर्चीटेक्ट से अभीष्ट निर्माण का नक्शा बनाया जाता है । वस्तुतः इष्ट निर्धारण से मनको एक निश्चित दिशा में आगे बढ़ने और तदनुरूप प्रयास करने हेतु साधन जुटाने का मार्ग मिल जाता है । जिस स्तर का तादात्म्य इष्ट के साथ है, उसी स्तर की अन्तःक्षेत्र की प्रसुप्त शक्तियाँ जागने लगती हैं । परब्रह्म के शक्ति भण्डार में से इसी स्तर की अनुग्रह वर्षा भी आरंभ हो जाती है ।

ईश्वरीय सत्ता का मनुष्य में अवतरण "उत्कृष्टता" के रूप में होता है । चिन्तन और चरित्र में उच्चस्तरीय उमंगे उभरने लगती हैं तथा उसी स्तर की गति विधियाँ चल पड़ती हैं । उत्कृष्टता की उपासना ही ईश्वर की उपासना है । उपास्य, लक्ष्य, इष्ट इसी को बनाना पड़ता है । प्राचीन काल में इस संबंध में तत्वज्ञानियों ने एकमत हो स्वीकार किया था कि आत्मिक प्रगति की साधना के लिए इष्ट रूप में गायत्री का ही वरण होना चाहिए । सृष्टि के आदि में ब्रह्माजी ने कमल पुष्प पर बैठ कर आकाशवाणी द्वारा निर्देशित गायत्री उपासना की थी और सृष्टि सृजन की सामर्थ्य प्राप्त की थी । त्रिदेवों की उपास्य गायत्री ही रही है ।

यों गायत्री का स्थूल रूप चौबीस अक्षरों के एक शब्द गुच्छक के रूप में है और उसकी प्रतिभा हंसारूढ़ देवी के रूप में बनती है । किन्तु यह नाम और रूप का निर्धारण है । चिन्तन को किसी दिशा में आगे बढ़ाने के लिए नाम, रूप का अवलम्बन अनिवार्य है । श्रद्धा का आरोपण संवर्धन इस प्रतिमा प्रतिष्ठापन के सहारे सहज-सुलभ रीति से अग्रगामी बनता है । मानवी श्रद्धा ही अपनी अभिरुचि एवं आकांक्षा के अनुरूप किसी केन्द्रबिन्दु का आस्था का समीकरण करती है उसे सशक्त बनाती है और उससे असाधारण लाभ उठाती है । जिसे साकार रूप में मानना हो वह एकलव्य के द्रोणाचार्य, मीरा के गिरधर गोपाल, रामकृष्ण परमहंस की काली की तरह गायत्री माता के रूप में उनका भाव निर्धारण कर सकता है । जो निराकार रूप में मानते हों, वे उत्कृष्टता के रूप में ऋतम्भरा प्रज्ञा के रूप में, सविता के स्वर्णिम प्रकाश के रूप में, महामंत्र के शब्दार्थ में छुपे हुए भाव के अनुरूप परमात्मा के गुणों के रूप में मानते हुए अपनी उपासना को गतिशील कर सकता है ।

जपयोग को सर्वश्रेष्ठ उपासना माना गया है । जप के लिए माला का प्रयोग किया जाता है । प्रश्न पूछा जा सकता है कि माला में १०८ दाने ही क्यों होते हैं ? न्यूनाधिक क्यों नहीं ?

प्रथम तो माला फेरने से कितना जप हुआ, इस बात का ठीक पता लग जाता है । दूसरे अंगुष्ठ और उँगली के संघर्ष से एक विलक्षण सूक्ष्म विद्युतधारा मस्तिष्कीय केन्द्रकों के स्तर पर उत्पन्न होती है जो सीधे हृदयचक्र को वेगस नर्व के माध्यम से प्रभावित कर मनको एकाग्र कर देती है । प्रकृति विज्ञान की दृष्टि से विश्व ब्रह्माण्ड में २७ नक्षत्रों को मान्यता दी गयी है । प्रत्येक नक्षत्र के चार-चार चरण ज्योतिष शास्त्र में प्रसिद्ध है । २७ को ४ से गुणा करने पर १०८ संख्या ही आती है । चौथे समस्त विश्व ब्रह्माण्ड को बारह भागों में विभक्त कर उन्हें राशि कहा गया है । १२ राशि व ९ ग्रहों का गुणनफल १०८ होता है । इस प्रकार समष्टि चेतना से संयुक्तीकरण हेतु सर्वश्रेष्ठ संख्या १०८ ही है । पाँचवाँ अंतिम कारण है दिन व रात्रि के कुल श्वासों की संख्या प्रत्येक में १०, ८०० है (१५ प्रति मिनट की गति से) । जप प्रमुख रूप से उपांशु किया जाता है जिसका फल सौगुना बताया गया है । इस प्रकार १०८X१०० , १०,८०० ।

गायत्री उपासना के माहात्म्य से अनेकानेक ग्रन्थ भरे पड़े हैं । वस्तुतः वे सभी लाभ साधक को मिल सकते हैं यदि बिना भटके राजमार्ग को अपनाया जाय तो आत्मोत्कर्ष की चरम परिणति पूर्णता तक पहुँचाती है । साकार व निराकार उपासना जब भी सारा तत्वज्ञान व पृष्ठभूमि समझते हुए की जाती है तो साधना से सिद्धि के सिद्धान्त में फिर कहीं भी किसी सन्देह की गुंजाइश नहीं रह जाती । *

गायत्री मंत्र में निहित प्रचण्ड शब्द सामर्थ्य

शब्द–शक्ति में निहित अकूत सामर्थ्य की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता । इसमें इतनी क्षमता विद्यमान है कि इस विराट ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति भी इसी शब्द–शक्ति से हुई बतायी जाती है । मंत्रों में इसी शब्द शक्ति को भिन्न–भिन्न रूपों में क्रियान्वित हुआ देखा जा सकता है ।

वैसे तो दैनिक जीवन में भी कटु व प्रेम भरे शब्दों की क्रिया–प्रतिक्रिया हम देखते सुनते रहते हैं, पर वर्तमान समय का सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाने वाला क्षेत्र–पदार्थ विज्ञान के विशेषज्ञों ने भी इसके अद्‌भुत सामर्थ्य को न सिर्फ स्वीकारा है, वरन् अब वे विभिन्न क्षेत्रों में इसका सफलतापूर्वक प्रयोग करने लगे हैं । "एचीवमेण्टस् ऑफ फिजिकल रिहैबिलिटेशन " नामक पत्रिका में इसी संदर्भ में एक घटना का विवरण छपा है, जिसके अनुसार एक महिला हाथ के पक्षाघात से इस कदर पीड़ित थी कि वह उससे कोई काम करना तो दूर, उसे हिला–डुला भी नहीं सकती थी, किन्तु जब उसके उक्त हाथ का पराध्वनि चिकित्सा पद्धति से कुछ दिनों तक उपचार किया गया, तो वह बिल्कुल स्वस्थ हो गई और सामान्य महिला की तरह जीवन बिताने लगी । इसी प्रकार की कर्णातीत ध्वनियों का प्रयोग सालदेंट्री हास्पिटल पेरिस में करके अगणित रोगियों को दुसाध्य रोगों से छुटकारा दिलाया गया । माउण्ट सिनाई अस्पताल, न्यूयार्क में ऐसे ही एक बार एक ऐसा मरीज लाया गया, जो बुरी तरह जल गया था, किन्तु ध्वनि चिकित्सा पद्धति के विशेषज्ञों ने उसे कुछ महीनों के इलाज द्वारा पूर्णतः ठीक कर दिया ।

जब इतनी सामर्थ्य सामान्य स्तर की ध्वनियों में हो सकती है, तो मंत्र तो विशेष प्रयोजन के लिए विशेष प्रकार से ऋषियों द्वारा निर्मित किये गये हैं । उनमें क्षमता भी विशिष्ट स्तर की हो, तो इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए । गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षर चौबीस शक्ति पुंज के प्रतीक हैं । इसमें अक्षरों का गुंथन कुछ इस प्रकार किया गया है कि जब उसका मंत्रोच्चार किया जाता है, तो एक विशेष प्रकार की ध्वनि–तरंगें निःसृत होती हैं, जो साधक के षट्‌चक्रों, ग्रन्थियों, उपत्यकाओं एवं ऐसे ही अनेकानेक सूक्ष्म अवयवों पर लक्ष्य पर चलायी गई गोली की तरह असर करती हैं । यदि साधक कुछ दिनों तक निष्ठापूर्वक संलग्न रहे, तो उसका प्रतिफल भी हस्तामलकवत् परिलक्षित होने लगता है । यह ध्वनि–विज्ञान पर आधारित इसके विशेष अक्षर क्रम का प्रभाव है । तंत्र शास्त्र में ह्री क्लीं श्रीं, हौं, जों, क्षः, फट् , जैसे कितने ही एकाक्षरी और द्विअक्षरी बीजमंत्र हैं, जिनका प्रकट में न तो कोई अर्थ निकलता है, न भाव, फिर भी जब इनका प्रयोग किया जाता है, तो वे लक्ष्य की ओर दनदनाती गोली की तरह भागते और कुछ क्षण में अपना चमत्कार कर दिखाते हैं ।

संगीत शास्त्र के विशारद जानते हैं कि सितार वाद्य में सिर्फ तारों का क्रम ही पर्याप्त नहीं है, बजाने वाले की उँगलियाँ किस प्रकार थिरकती हैं, महत्वपूर्ण यह भी है । रागों में अन्तर इस उँगली संचालन पर भी निर्भर है । मात्र वाद्य यंत्रों में तारों का क्रम और गुंथन ही सब कुछ नहीं होता । मंत्र का शब्द संधान और साधक की विधिवत् उच्चारण प्रक्रिया–इन दोनों का समन्वय न सिर्फ साधक के अन्तःकरण में वरन् अंतरिक्ष में भी एक विशिष्ट प्रकार की स्वर लहरी निनादित करते हैं । इनके प्रभाव से साधक के अन्तराल और सूक्ष्म जगत में शक्ति उपार्जित होने लगती है जो मंत्रानुष्ठान के फलस्वरूप उपलब्ध होती हुई मानी गई है ।

यों तो सद्‌बुद्धि की याचनापरक आर्षग्रन्थों में ढेरों मंत्र है । अन्य भाषाओं में भी ऐसी कितनी ही कविताएँ मौजूद हैं । यदि अर्थ मात्र की ही बात रही होती, तो उन कविताओं और गायत्री मंत्र में कोई अन्तर न होता । कविता की दृष्टि से गायत्री मंत्र में छन्द दोष बताया जाता है । आठ–आठ अक्षर के तीन चरण होने पर शुद्ध गायत्री छन्द बनता है । इस प्रकार देखा जाय, तो गायत्री मंत्र में २३ अक्षर ही होते हैं, किन्तु ऋषियों–मनीषियों ने इसमें २४ अक्षर स्वीकार किये हैं और "ण्यं " के उच्चारण को ध्यान में रखते हुए उसे "णियम्" बना कर चौबीसवें अक्षर होने की पुष्टि की है । यह चौबीसवाँ अक्षर पूर्णतः उच्चारण शास्त्र पर आधारित है । रचयिताओं को निश्चय ही इस त्रुटि का ध्यान रहा होगा, फिर भी उन्होंने शब्द

गुंथन से उत्पन्न होने वाले ध्वनि प्रवाह को ही महत्व दिया और उस रूप में रचा जैसा कि अब है ।

मंत्रोच्चार से उत्पन्न ध्वनि प्रवाह साधक की समग्र चेतना को प्रभावित करता है और उसके कंपन अंतरिक्ष में बिखरी हुई परिस्थितियों को अनुकूल बनाते हैं, साथ ही साधक के स्थूल , सूक्ष्म, कारण शरीरों में अनेक आवश्यक और उपयोगी परिवर्तन करते हैं । कोई भी शक्ति सबसे पहले अपने उत्पादन स्थल को प्रभावित करती है, फिर उसकी क्षमता अगले क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाती हुई आगे बढ़ती है । आग जहाँ लगेगी पहले वहीं स्थान गरम होगा, बाद में उस गर्मी का विस्तार अगले क्षेत्र में फैलता चला जायेगा मंत्र साधना से सबसे अधिक प्रभावित साधक का व्यक्तित्व ही होता है ।

मंत्र साधना ध्वनि प्रधान होने के बावजूद उसके फलीभूत होने में और तीन प्रधान तथ्य काम करते हैं–(१) संयम (२) उपकरण (३) विश्वास शब्द संरचना और उच्चारण की शुद्धतायुक्त ध्वनि ही सार्थक होती है–यह तो सर्वविदित तथ्य है, किन्तु साधक के शारीरिक–मानसिक संयम की भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका होती है । उपासना के दौरान माला, स्थान, उपकरण , उपचार आदि में प्रयुक्त हुए पदार्थों की शुद्धता का भी ध्यान रखना पड़ता है । तीसरी और सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है मंत्र के प्रति अटूट विश्वास । यह सभी बातें जहाँ भली–भाँति प्रयुक्त होती हैं, वहाँ मंत्रोपासना का प्रतिफल भी निश्चित रूप से दृष्टिगोचर होता है ।

तंत्र शास्त्र में हृदय को शिव और जिव्हा को शक्ति कहा गया है । इन दोनों को "प्राण " और "रयि" नाम भी दिये गये हैं । भौतिकी के शब्दों में इन्हें 'धन' और 'ऋण' विद्युत प्रवाह भी कह सकते हैं । जिव्हा से मंत्र उच्चारण होता है । यह हलचल हुई । इसके भीतर जितनी शक्ति होगी उतना ही बढ़ा–चढ़ा प्रभाव उत्पन्न होगा । यह प्रभाव हृदय के बिजली घर में उत्पन्न होता है । यहाँ हृदय से तात्पर्य उस भावना स्तर से है, जो कृत्रिम रूप से नहीं, व्यक्ति की मूल सत्ता के आधार पर विनिर्मित होता है । हृदय को अग्नि और जिव्हा को सोम कहा गया है । दोनों के समन्वय से चमत्कारी आत्मशक्ति उत्पन्न होती है । भावना और कर्म की उत्कृष्टता से मंत्र साधना प्राणवान बनती है–इस रहस्य को यदि समझा और अपनाया जा सके तो किसी को भी इस क्षेत्र में निराश न रहना पड़े ।

महर्षि जैमिनी ने पूर्व मीमांसा में मंत्र शक्ति के विकास की चर्चा करते हुए उसके चार आधार बताये हैं–(१) प्रामाण्य–अर्थात् मन गढन्त नहीं, विधि के पीछे सुनिश्चित विधि–विधान होना । (२) फलप्रद –अर्थात् जिसका उपयुक्त प्रतिफल देखा जा सके (३) बहुलीकरण–अर्थात् जो व्यापक क्षेत्र को प्रभावित करे (४) आयातयामता – अर्थात् साधक के श्रेष्ठ व्यक्तित्व की क्षमता । इन चारों तत्वों का समावेश होने से मंत्र प्रक्रिया में दैवी शक्ति का समावेश होता है और उसका चमत्कारी प्रतिफल देखा जाता है ।

विश्वामित्र, वसिष्ठ, परशुराम आदि ने ऋषि श्रेष्ठों गायत्री शक्ति की आराधना करके दिव्य प्रतिफल प्राप्त किये थे, किन्तु सामान्य व्यक्ति वैसा नहीं कर पाते । इसमें मंत्र की श्रेष्ठता एवं उपासना की गरिमा का दोष नहीं । साधक का ओछा व्यक्तित्व अभीष्ट परिणाम उत्पन्न करने योग्य न होने से ही निराशा हाथ लगती है । बच्चों के खेलने वाले प्लास्टिक के बन्दूक में रख कर बढ़िया कारतूस चलाने पर भी लक्ष्यवेध में सफलता न मिलेगी । उपयुक्त परिणाम उत्पन्न करने में कारतूस ही सब कुछ नहीं होता, बढ़िया बन्दूक की भी अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है । दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ का पौरोहित्य करने के लिए अखंड व्रतधारी श्रृंगी ऋषि का सहयोग लेना पड़ा था । महाभारत की कथा है कि अश्वत्थामा और अर्जुन ने मंत्र शक्ति "सन्धान–अस्त्र " छोड़े । उनकी भयंकरता को देख कर व्यास जी बीच में आ खड़े हुए और दोनों से अपने अस्त्र वापस लेने को कहा । अर्जुन ने जितेन्द्रिय होने के कारण अपना अस्त्र वापस कर लिया, किन्तु अश्वत्थामा असंयमी होने के कारण वैसा करने में विफल रहा ।

> *जगद्गुरु शंकराचार्य जी का कथन है–"गायत्री की महिमा का वर्णन करना मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर है । बुद्धि का शुद्ध होना इतना बड़ा कार्य है, जिसकी समता संसार के और किसी काम से नहीं हो सकती । आत्मबल प्राप्त करने की विश्वदृष्टि बुद्धि से प्राप्त होती है, उसका प्रेरक गायत्री मंत्र है , उसका अवतार दुरितों को नष्ट करने और ऋत के अभिवर्धन के लिए हुआ है ।"*

मंत्र शास्त्र में मंत्र विनियोग के पाँच अंग माने गये

हैं–(१) ऋषि (२) छन्द (३) देवता (४) बीज (५) तत्व इन पाँचों को मंत्र शरीर का आधार स्तम्भ माना गया है । पाँच तत्वों से स्थूल काया बनी है । पाँच प्राणों से सूक्ष्म शरीर का निर्माण हुआ है । कारण शरीर में पाँच तन्मात्राएँ आधारभूत हैं । वनस्पतियों का पंचांग प्रयुक्त होता है । पंचगव्य गौ शरीर के पाँच अमृत माने गये हैं । रत्नों में पाँच ही प्रमुख हैं । पाँच कोशों के जागरण की विधा गायत्री मंत्र के पाँच मुख चित्रित करते हुए समझायी गई है । मंत्र शक्ति को जाग्रत करने के लिए उपरोक्त पाँच आधारों को उसके विनियोग में समाविष्ट किया गया है ।

(१) ऋषि अर्थात् मार्गदर्शक गुरु । उपासना एक महत्वपूर्ण विज्ञान है । इसके लिए अनुभवी और निष्णात् मार्गदर्शक चाहिए । सिर्फ पुस्तकों को पढ़ कर उपासना सफल नहीं हो सकती । सामर्थ्यवान गुरु शिष्य को अपने आत्मबल का सामर्थ्यवान अनुदान भी देता है । इसलिए समर्थ गुरु की नियुक्ति इस क्षेत्र में आवश्यक बतायी गई है ।

(२) विनियोग का दूसरा चरण छन्द है । छन्द अर्थात् स्वर ताल, लय । किस मंत्र का किस स्वर लय से उच्चारण किया जाय, इसे जान कर उस प्रक्रिया को पूर्ण करने से ही इसका दूसरा चरण फलीभूत होता है ।

(३) तीसरा चरण है– देवता । देवता का अर्थ है सूक्ष्म जगत से चलने वाले शक्ति प्रवाहों में से अभीष्ट परत का चयन । इस प्रक्रिया के द्वारा यदि मंत्र को बल देने वाली देव शक्ति से ठीक तरह सम्पर्क किया जा सके, तो उसका अभीष्ट परिणाम उपलब्ध होता है ।

(४) चौथा चरण है–बीज । बोल–चाल की भाषा में इसे हम स्विच कह सकते हैं , जिस प्रकार भिन्न–भिन्न स्विचों को दबाने से विद्युत की पृथक्–पृथक् मशीनें चलने लगती हैं उसी प्रकार मंत्रों में बीज एवं सम्पुट बदल देने से उनकी क्षमता और दिशा भी बदल जाती है ।

(५) विनियोग का पाँचवाँ अंग है–तत्व । तत्व अर्थात् लक्ष्य । किस प्रयोजन के लिए आराधना की जा रही है , इसका संकल्प उद्देश्य–निर्धारण ही तत्व है । मंत्राराधन में प्रयुक्त उपकरणों में किसी तत्व की प्रधानता है– इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए उपयोगी सामग्री का निर्धारण करना पड़ता है । इसी कारण से भिन्न–भिन्न मंत्रों में स्थान, आहार उपचार, उपकरण आदि का जो अन्तर रहता है, उसे तत्व प्रक्रिया से संबंधित माना जाना चाहिए ।

आर्ष ग्रन्थों में आद्यशक्ति गायत्री को पंचमुखी बताया गया है । इसके पाँच मुख मंत्र विनियोग के उपरोक्त पाँच अंगों के प्रतीक–प्रतिनिधि हैं । इसके अतिरिक्त चार वेद और पाँचवाँ यज्ञ विज्ञान को भी ये निरूपित करते हैं । संसार में ज्ञान–विज्ञान की जितनी धाराएँ हैं, उनके उद्गम स्रोत चार वेद और पाँचवाँ यज्ञ में निहित हैं । अतः एक आद्यशक्ति गायत्री की उपासना द्वारा हम उन सभी प्रयोजनों की सिद्धि कर सकते हैं, जो अलग–अलग कार्यों के लिए भिन्न–भिन्न मंत्रों की उपासना द्वारा हस्तगत की जाती हैं । इसे गायत्री मंत्र की विशिष्ट शब्द–सामर्थ्य ही कहनी चाहिए कि एक ही मंत्र के प्रयोग द्वारा भौतिक अथवा आध्यात्मिक सभी प्रयोजन पूरे हो जाते हैं । ✳

पौराणिक आख्यान के अनुसार भद्रदेश के राजा अश्वपति संतानहीन थे । भगवती गायत्री की साधना की प्रेरणा उन्हें महर्षि पाराशर ने दी । पूर्ण विधि–विधान से दोनों पति–पत्नी ने अनुष्ठान किया तो रानी की इच्छानुसार उन्हें सावित्री के रूप में कन्या की प्राप्ति हुई । सर्वांग सुन्दर युवती सावित्री का विवाह राजा द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान से हुआ । जंगल में यज्ञहेतु ईंधन लेने गए सत्यवान की जब अकाल मृत्यु हो गयी तो सावित्री ने अपनी गायत्री साधना के आधार पर यमराज को भी उसकी विनती सुनने पर विवश कर दिया । पतिनिष्ठा से प्रसन्न यमराज ने सावित्री को पति की प्रिय पत्नी बनने तथा पुत्रवान बनने का आशीर्वाद दिया । इन सब वरदानों के बाद यमराज को उस सत्यवान को पुनर्जीवित करना पड़ा जिसकी आयु पूरी हो चुकी थी ।

कथा का भावार्थ यह कि गायत्री साधना से न केवल सन्तानहीन को इष्ट की प्राप्ति होती है, वरन् अकाल मृत्यु हो भी जाय तो उससे भी लौटाया जा सकता है । जरा, व्याधि, मृत्यु फिर किसी का भी भय गायत्री साधक को नहीं रहता । निष्ठा अश्वपति व मालती तथा पुत्री सावित्री के स्तर की चाहिए ।

उपासना का विज्ञान

उपासना का अर्थ है समीपता । भौतिक अर्थों में समीपता का तात्पर्य इतना ही है–किसी के पास जा बैठना, उसकी निकटता हासिल कर लेना । पर कोई भी वस्तु, घटना, परिस्थिति नितान्त भौतिक नहीं होती । भौतिक तो सिर्फ ऊपर से दिखने वाला खाँचा–ढाँचा है । इसके पीछे विद्यमान क्रियाशील स्पन्दनों के रूप में ऐसा बहुत कुछ विद्यमान है, जिसे हमारी आखें भले न देख पाएँ पर संवेदनशील अन्तःकरण उसे पल–पल अनुभव करता रहता है । इन अर्थों में समीपता एक छोटी सी घटना न होकर एक सूक्ष्म प्रक्रिया है । जिसे व्यक्तित्व के रूपान्तरकारी प्रयोग के रूप में समझा जा सकता है ।

मनोवैज्ञानिक थूलेस ने इसे कहीं अधिक सूक्ष्म और तीव्र मनोरसायन "साइको केमिस्ट्री" के रूप में माना है । उनके ग्रन्थ "इंटररिवेक्शन्स विट्वीन पर्सनाल्टीज" के अनुसार इस प्रक्रिया की प्रभाविकता और तीव्रता का अनुपात उसी रूप में होता है, जिस रूप में समीपता की स्थिति है । समीप होने के लिए आवश्यक है एक के व्यक्तित्व का कोई पहलू दूसरे के व्यक्तित्व के किसी पहलू से मेल खाता हो । व्यक्तित्व के जितने अधिक पक्षों में पारस्परिक सामंजस्य होगा, निकटता उतनी ही अधिक होगी । इसके प्रभाव में दोनों के बीच ऐसी अन्तर्क्रिया घटित हो जाएगी कि वे एक दूसरे को अपने भावों–विचारों में साझीदार बनाने लगेंगे । धीरे–धीरे यह साझीदारी, प्रगाढ़ता, आत्मीयता, और एकात्मता में बदल जाती है । यहाँ तक कि सबल व्यक्तित्व का हलका सा स्पर्श थोड़ा सामीप्य भी दूसरे व्यक्तित्व के सभी पहलुओं को बदल डालने वाला सिद्ध होता है । नारद के द्वारा वाल्मीकि के व्यक्तित्व का परिवर्तन, महात्मा बुद्ध के द्वारा अंगुलीमाल को बदल देना समीपता के इन्हीं मनोवैज्ञानिक प्रभावों को बताते हैं ।

इन मनोवैज्ञानिक अर्थों में उपासना को आत्मा और परमात्मा के बीच सद्गुणों, सद्भावों और चित शक्ति के संवहन की अंतःक्रिया समझा जा सकता है । थियोलॉजियन अपटॉन सिक्लेयर के ग्रन्थ "साइकोलॉजी ऑफ रिलीजन" के अनुसार एक मात्र परम पुरुष ही है जिससे सर्वाधिक प्रगाढ़ और चिरस्थाई सम्बन्धों की स्थापना सम्भव है । इस कथन के पीछे उनका तर्क यह है कि परमात्मा का व्यक्तित्व अनन्त आयामी है । उसी से मानवी व्यक्तित्व के सभी आयामों के बीच ठीक–ठीक सामंजस्य सम्भव है । फिर यह मात्र व्यक्तित्व और व्यक्तित्व के बीच सामंजस्य स्थापन भर नहीं है बल्कि व्यक्ति का परम व्यक्ति से मिलन है ।

यों यह कहा जा सकता है जब भगवान कण–कण में समाए हुए हैं तब मानवी काया और चेतना में समाए हुए क्यों नहीं होंगे । जो अपने में ओत–प्रोत हैं वे दूर कैसे ? जो दूर नहीं है उनकी समीपता का क्या अर्थ ? इस सामंजस्य की विवेचना इस प्रकार हो सकती है कि यह समीपता उथली है गहरी नहीं । माना कि शरीर में हलचलों के रूप में मन में चिन्तन के रूप में विश्वव्यापी चेतना ही काम कर रही है तो भी स्पष्ट है मनुष्य की आकांक्षाएँ, आस्थाएँ दिव्य सत्ता के अनुरूप नहीं हैं । उनमें निकृष्टता का आसुरी अंश भरा पड़ा है । मनुष्यता की सार्थकता तभी है, जब उसका स्थान और स्तर भी उसी के अनुरूप ऊँचा उठ सके । निम्न योनियों के जीवधारी भोजन और संतति संवर्धन के लिए जीते हैं । स्वार्थ सिद्धि ही उनकी नियति होती है । शरीरगत लाभ ही उनके प्रेरणा स्रोत होते हैं । दूसरों के साथ वे आत्म भाव बहुत थोड़ी मात्रा में मिला पाते हैं ? परमार्थ परायणता के अंश उनमें नगण्यप्राय ही देखे जा सकते हैं । अन्तः संरचना की यही स्थिति यदि मनुष्य की बनी रहे, उसका व्यक्तित्व यदि निम्न प्राणियों की तरह भोंड़ा और भद्दा हो तो समझना चाहिए कि कायिक विकार हुआ चेतनात्मक नहीं ।

बहुतायत उन्हीं की है जो शरीर संरचनाभर से मनुष्य हैं । उनके दृष्टिकोण में पिछड़ी योनियों जैसी निकृष्ट स्वार्थ परता भरी पड़ी है । आयु की दृष्टि से प्रौढ़ हो जाने पर भी यदि सारा आचार–विचार बच्चों जैसा बना रहे तो उस अविकसित व्यक्तित्व पर चिन्ता व्यक्त की जाएगी ठीक यही दशा हममें से बहुतों की है जो इस देवदुर्लभ शरीर में प्रवेश तो पा गए पर उनने दृष्टिकोण में क्रियाकलाप में वही पिछड़े कृत्य सँजोए रखे ।

व्यक्तित्व को इस दयनीय स्थिति से उबारने के लिए उपासना का उपक्रम अपनाना पड़ता है । यह समूची अन्तः संरचना को बदल डालने वाला महान–प्रयोग है,

जिसे पूरा करने के लिए समय श्रम और मनोयोग के साथ अटूट धैर्य की आवश्यकता पड़ती है । जो इसे कर्मकाण्ड के कुछ कृत्यों के रूप में समझते हैं और उन्हें उल्टे–सीधे ढंग से पूरा करके लाभ बटोरना चाहते हैं, उन्हें परिणाम में निराशा मिलनी सहज है ।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि कर्मकाण्ड निरर्थक हैं । इनकी अपनी उपयोगिता और आवश्यकता शरीर और मनको आदर्शवादी सीमाओं में बाँधे रखने में है । इस प्रयोग के दो पक्ष हैं । प्रथम में उन तैयारियों की गणना होती है जिसके द्वारा हम शरीर और मन को उपासना के लिए ईश्वर की समीपता पाने के लिए तैयार करते हैं । ये तैयारियाँ महत्वपूर्ण हैं और अनिवार्य भी । जब किसी उच्चपदस्थ अधिकारी अथवा किसी अन्य अति विशिष्ट व्यक्ति से मिलने के लिए हमें अपने को तैयार करना पड़ता है, आवश्यक मनोभूमि बनानी पड़ती है । अनेकों सावधानियाँ बरतनी पड़ती हैं । तब विश्व सरंचना के सर्वोच्च अधिकारी, समस्त जीवन व्यापार के केन्द्र बिन्दु से घनिष्टता पाने के लिए यदि सावधानी बरतनी पड़े तो आश्चर्य क्या ?

तैयारियों का तात्पर्य उन बाधाओं, विघ्नों का निवारण निष्कासन और निराकरण है जो उपासना में बाधक हैं । ये सारी बाधाएँ कहीं बाहर न होकर हमारे स्वयं के व्यक्तित्व में हैं । इनके निवारण का नाम ही तप है । बाह्य परिस्थितियाँ हमारी इन तैयारियों में साथ दें इसी की पूर्ति के लिए कर्मकाण्ड हैं । व्यक्तित्व की संरचना भेद, समय और परिस्थितियों के बदले रूप के अनुसार इनके प्रकार अनेक हो सकते हैं, पर प्रत्येक धर्म, सम्प्रदाय आचार्य इस तथ्य से सहमत हैं कि इन सबके पीछे एक ही मूल तत्व है स्वयं के अस्तित्व को परम अस्तित्व से जोड़ने मिलाने समीप ले जाने के लिए तैयार करना ।

तैयारियाँ उपासना का प्राण हैं । इस महाविद्या में निष्णात् होने के लिए अनिवार्य शुल्क । जिसको चुकाए बिना इसमें प्रवेश मिलना सम्भव नहीं । योगदर्शन के सूत्रकार महर्षि पतंजलि ने इन्हीं को यम–नियम का नाम दिया है । गाँधी जी के एकादश व्रतों का तात्पर्य यही है । बुद्ध के आर्य अष्टांगिक मार्ग और भगवान महावीर के पंचमहाव्रतों का रहस्य यही है । लाओत्से ने अपने स्वर्ण सिद्धान्त में इसी सत्य को उजागर किया है ।

ठीक–ठीक तैयारी के बाद ही वे क्षण आते हैं जब हम भौतिक जीवन से ऊपर उठ जायँ ? महामिलन के इन क्षणों में आत्मा का स्वरूप जीवन लक्ष्य एवम् परमात्म सान्निध्य के अलावा और कुछ सूझ ही न पड़े । यही उपासना है । इसकी पहिचान इतनी ही है कि उन क्षणों में मनके ऊपर आत्मिक स्तर का चिन्तन छाया रहा या भौतिक स्तर का । यदि संसारिक मनोकामनाओं की भीड़ उथल–पुथल मचाए रही तो समझना चाहिए यह कृत्य भी विशुद्ध रूप से भौतिक ही है । इसमें आत्मिक प्रगति जैसे किसी लाभ की कोई सम्भावना नहीं । यदि उतने समय में शरीर रहित भौतिक प्रभावों से मुक्त ज्योतिर्मय आत्मा ही ध्यान में है और उस महाज्योति के साथ समन्वित हो जाने की दीप–पतंग जैसी आकांक्षा उमड़ रही है तो समझना चाहिए कि उपासना का सच्चा स्वरूप अपनालिया गया ।

मनोवैज्ञानिक थियोडर रेक ने इन क्षणों में घटने वाली मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को एक खास नाम दिया है

आर्थर कोसलर एक प्रख्यात चिन्तक के रूप में मान्यता प्राप्त विद्वान हैं । हंगरी में जन्मे इस मनीषी ने गायत्री मंत्र की शक्ति पर वैज्ञानिक विवेचन कर इसे सार्वभौम उपासना बताया था । युद्धोन्माद से बढ़ते विश्वव्यापी तनाव को देखते हुए उनने कहा था कि गायत्री मंत्र जिस देश से उत्पन्न हुआ है, वह राष्ट्र यदि नेतृत्व अपने हाथ में ले एवं करोड़ों भारतवासी एक साथ गायत्री का उच्चारण आरम्भ कर दें तो इससे उद्भूत ऊर्जा किसी भी आणविक विभीषिका को टाल सकती है । ब्लिट्ज के सम्पादक श्री करंजिया से साक्षात्कार के दौरान उनने यह कहा था जिसे अगस्त १९८२ के नवनीत में प्रकाशित भी किया गया था ।

पर्टिशिपेशन मिस्टीक । उनके अनुसार इस समय एक बहुत रहस्यमय ढंग से हमारा अस्तित्व वैश्व चेतना से तादात्म्य बिठाने लगता है । जिसका परिणाम होता है व्यक्तित्व के प्रत्येक हिस्से में बदलाव । दिव्य ज्योति प्रत्येक हिस्से को दिव्यता का रूप देने लगती है । सत्ता के प्रत्येक भाग में संव्याप्त शक्तियों का जागरण काल यही है । शारीरिक क्षमता–भाव और विचारों की सामर्थ्य में कुछ ऐसा बदलाव आने लगता है जिसे आश्चर्यजनक और अलौकिक कहा जा सके । अपढ़ गँवार समझे जाने वाले दादू, कबीर, रैदास के व्यक्तित्व में आने वाले परिवर्तनों के पीछे यही मनोवैज्ञानिक तथ्य हैं । यही प्रक्रिया हमारे व्यक्तित्व, चरित्र , लक्ष्य, दृष्टिकोण को परिष्कृत परिवर्तित कर ऐसी चेतनात्मक शक्ति का रूप दे सकती है । जिसके बल पर हम स्वयं देवता ऋषियों जैसी चमत्कारी सामर्थ्य का अनुभव कर सकें । ✻

साधना की सफलता वातावरण पर निर्भर

विशिष्ट स्तर के परिवर्तनों के लिए जहाँ उपयुक्त उपचार पद्धति प्रयोगाधिकारी तथा आवश्यक साधन उपकरणों की आवश्यकता होती है, वहाँ विशेष वातावरण का भी चयन करना पड़ता है । टीलों पर बाग लगाना–रेगिस्तान में खेती करना–दलदल में नगर बसाना–इच्छा होते हुए भी नहीं बन पड़ता । इसके लिए समस्त साधन होते हुए भी वातावरण अनुकूल न होने के कारण स्थान बदलना पड़ता है । हर काम हर स्थान पर नहीं हो सकते । बहुत सी दुर्लभ जड़ी बूटियाँ ऐसी हैं जो ठण्डे या गरम प्रदेशों में ही उत्पन्न हो सकती हैं । उन्हें विपरीत वातावरण में लगाया जाय तो मेहनत और लागत बेकार चली जाती है । यही बात विशिष्ट आध्यात्मिक साधना पर भी लागू होती है । उसके लिए ऐसे वातावरण का चयन अनिवार्य है जहाँ प्राणतत्व पहले से विद्यमान हो, लम्बे समय तक विशिष्ट तपश्चर्या सम्पन्न होती रही हो, एवं छोटे प्रयास करने पर जहाँ भारी सफलता मिलने की संभावना हो ।

भगवान कृष्ण और रुक्मिणी का विचार एक बार उच्चस्तरीय संतान उत्पन्न करने का हुआ इसके लिए उन्हें विशिष्ट तप करना था । हलकी फुलकी साधना तो घर गाँव में रहते हुए सामान्य क्रियाकलापों के साथ भी चलती रहती है किन्तु उच्चस्तरीय साधनाओं में प्रयास ही सब कुछ नहीं होता । इसके लिए वातावरण भी चाहिए । अस्तु दोनों को सुसम्पन्न नगरियों में उपलब्ध अपने प्रस्तुत साधन छोड़ने पड़े और अभीष्ट प्राप्ति के लिए उपयुक्त स्थान उत्तराखण्ड के हिमाच्छादित क्षेत्र में ढूँढ़ना पड़ा । वहाँ उन लोगों ने बारह वर्ष तक मात्र जंगली बेर खाकर तप किया । तदुपरान्त ही उनके स्तर की सुसंतति के रूप में प्रद्युम्न का जन्म हो सका ।

लंका विजय सतयुग स्थापन के उपरान्त राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को आत्म कल्याण की साधना आवश्यक प्रतीत हुई । गुरु वसिष्ठ ने भी इस आकांक्षा का समर्थन किया । अयोध्या में साधनों की कमी नहीं थी, उसके लिए सभी सुविधाएँ जुट सकती थीं, पर मूल प्रश्न एक ही था कि अभीष्ट वातावरण वहाँ कहाँ से आये ? जन्म भूमि और कर्म भूमि के साथ मनुष्य के अनेकानेक संस्कार जुड़े होते हैं । अपना–पराया, राग–द्वेष, स्मृति–अभ्यास, सम्पर्क–स्वभाव के कुछ ऐसे प्रवाह मनुष्य के साथ जुड़े होते हैं कि बहुत रोकथाम करने पर भी मनुष्य की चिन्तन पद्धति अभिरुचि और आदतें उसी अभ्यस्त ढर्रे में अनायास ही घूमती रहती है । विचारों तक की रोकथाम और मोड़–मरोड़ जब कठिन पड़ती है तब अचेतन के साथ जुड़े रहने वाले स्वभाव–अभ्यास को कैसे बदला जाय ? इसके लिए स्थान बदलने की आवश्यकता पड़ती है । परिस्थितियों का भी मनःस्थिति पर प्रभाव पड़ता है । स्थान बदलने पर वहाँ के पदार्थ और व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध भी झीने पड़ते हैं । फलतः आगे न बढ़ने देने वाले संचित संस्कारों की पकड़ भी ढीली हो जाती है । साथ ही अधिक प्रभावी वातावरण का दबाव पड़ने पर भी मन का बदलना सरल हो जाता है । इन्हीं महत्ताओं को ध्यान में रखकर गुरु वसिष्ठ ने चारों भाइयों को हिमालय जाकर साधना करने का निर्देश दिया । देवप्रयाग, मुनि की रेती, लक्ष्मण झूला जैसे स्थानों पर उन लोगों की तपःस्थली थी, ऐसा मनीषियों का मत है ।

महाभारत के उपरान्त पाण्डव सिंहासनारूढ़ तो हुए पर साथ ही आत्मोत्कर्ष की आकांक्षा भी उमगती रही । भगवान कृष्ण ने उनकी अभिलाषा को समझा और इसके लिए स्थान बदल देने का परामर्श दिया । द्रौपदी समेत पाँचो पाण्डवों ने हिमालय के लिए प्रस्थान किया बद्रीनाथ के निकट पाण्डुकेशर नामक विशिष्ट स्थान में वे तपश्चर्या करते रहे । यहीं पर भगवान ने उन्हें पाण्डव गीता सुनाई थी । वह ज्ञान भी 'योगवशिष्ठ' के समतुल्य ही माना जाता है । तपस्वी जीवन बिताते हुए उच्चस्तरीय साधना करते हुए, पाण्डवों ने स्वर्ग प्रस्थान किया था यह सभी को विदित है । यह विशिष्ट कार्य वे इन्द्रप्रस्थ अथवा हस्तिनापुर रहते हुए राजकाज चलाते हुए नहीं कर सकते थे । वातावरण व्यक्ति का तीन चौथाई मन अपने साथ अनायास ही जकड़े रहता है । अभ्यस्त ढर्रे में स्थान के साथ–स्वजन संबंधियों के साथ जुड़े हुए सम्बन्ध इतने सघन होते हैं जिनका उल्लंघन करते हुए पार जा सकना दुष्कर समझकर यही उपाय अपनाया जाता है कि

उपयुक्त वातावरण की दृष्टि से पुराने सम्बन्धों से जकड़ा हुआ स्थान बदल दिया जाय । पाण्डवों ने भी राम बंधुओं की तरह वही किया ।

दिव्य वातावरण के कारण ही महान तपश्चर्याओं का इतिहास हिमालय क्षेत्र के साथ जुड़ा है । तीर्थ स्थानों में लोग इन्हीं कारणों से जाया करते थे । गंगा स्नान से जो पवित्रता अनुभव होती है, वह उसी पानी को तालाब या कुलाबे से निकालकर नहा लेने से पूरी नहीं हो सकती । स्थान और वातावरण का अपना महत्व है । यरूशलम जैसा ईसाइयों का अन्य धर्म केन्द्र नहीं बन सकता । संसार भर के बौद्ध भारत में भगवान बुद्ध के लीलाकेन्द्रों में अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित करके ही सन्तोष की सांस लेते हैं । जैन और सिख तीर्थों के मौलिक स्थानों के सम्बन्ध में भी यही बात है । इमारतों और पुरोहित का प्रबंध अन्यत्र कर लेने पर भी वैसा समाधान हो सकना कठिन है ।

स्थानों की अपनी विशेषता और महत्ता न केवल आध्यात्मिक दृष्टि से वरन् भौतिक दृष्टि से भी है । धरती के कुछ स्थान ऐसे हैं जिनकी अपनी विशेषता है । वह विशेषता कृत्रिम रूप से अन्यत्र पैदा नहीं की जा सकती । दक्षिण अफ्रीका में संसार का अधिकांश सोना पैदा होता है । मृत सागर में अत्यन्त गाढ़ा एवं खारा पानी है । खगोल विद्या की आवश्यक जानकारी पर एक विशेष क्षेत्र में भू चुम्बकीय धाराओं व अन्तरिक्षीय प्रवाहों के आधार पर मिश्र में पिरामिड बने हैं । कोणार्क का सूर्य मैदिर ऐसे स्थान पर बना है जहाँ से सूर्य ग्रहण का अनुसंधान करने के लिए संसार भर के विज्ञानी वहाँ आते हैं । गर्म पानी के जमीन से निकलने वाले ऐसे फब्बारे (गीजर्स) मात्र न्यूजीलैण्ड में ही पाये जाते हैं , जिनसे बड़े परिमाण में ऊर्जा पैदा की जाती है । रूस के कजाकिस्तान व अजर बेजान क्षेत्र में जितनी लम्बी आयु के जीने वाले दीर्घजीवी होते है, संसार में अन्यत्र नहीं देखे जाते । वायु का दबाव जैसा हालैण्ड में है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं । पवन चक्कियाँ उस देश में जितनी सफल हुई हैं उतनी और किसी देश में नहीं ।

वातावरण स्थान एवं जलवायु को देखते हुए ही स्वास्थ्य सुधार के लिए "सैनिटोरियम " विशेष स्थान पर ही बनाये जाते हैं । भले ही लोगों को वहाँ पहुँचने में असुविधा होती हो । भुवाली, कसौली, कौसानी नामक स्थानों पर सैनिटोरियम प्रायः ऊँचे पर्वतीय स्थानों पर स्वास्थ्य सुधार की दृष्टि से उपयुक्त समझे गये वातावरण में बने हैं । परिणामों को देखते हुए स्पष्ट है कि रोग और उपचार अन्यत्र जैसा रहने पर भी वहाँ भर्ती हुए रोगी आशातीत प्रगति करते हैं और जल्दी अच्छे होने में इन उपचार गृहों का परिणाम आश्चर्यजनक रहता है । यह सफलता रोगी अपने–अपने स्थानों पर रहकर उपलब्ध नहीं कर सकते ।

बम्बई का केला, नागपुर का सन्तरा, लखनऊ का आम मैसूर का चन्दन, बलसाड़ का चीकू, हिमालय का सेव, सिन्ध का खजूर एवं हींग, समुद्र तटीय क्षेत्र का नारियल प्रसिद्ध है । उन्हीं पौधों को अन्यत्र लगाया जाय, तो वह विशिष्टता और गुण उपलब्ध नहीं होंगे । इसमें माली का दोष नहीं, जलवायु मूल कारण है । सरहदी पठान और नम क्षेत्र के निवासी बंगाली का शरीर देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि आहार आदि की सुविधा में अन्तर न रहने पर भी स्वास्थ्य में इतना अन्तर क्यों रहता है ?

जो बात भौतिक क्षेत्र में जलवायु और जमीन पर लागू होती है वही अध्यात्म क्षेत्र के प्रयोगों और परिणामों के सम्बन्ध में उच्चस्तरीय वातावरण पर निर्भर रहती है । इसमें भूमिगत संस्कार प्राणवान सान्निध्य तथा क्षेत्रीय वातावरण पुरातन संचित संस्कार आदि कितने ही कारण काम करते हैं । तीर्थों की स्थापना पुरातन काल में इन्हीं तथ्यों को समन्वित करते हुए की गई थी ।

हरिद्वार का शांतिकुंज अपने समय का एक ऐसा गायत्री तीर्थ है जो स्थान की महिमा वातावरण की पवित्रता घनीभूत प्राणऊर्जा तपश्चर्या के बलशाली चुम्बक एवं प्रफुल्लता के दिव्य तत्वों को अपने अन्दर सँजोए हुए है, जिसके साये में मानव अपने दैनन्दिन जीवन के संताप, क्लेश, त्रिताप , आधि–व्याधि एवं भयंकर मुसीबतों से छुटकारा पा सकते हैं । यह एक सुविदित तथ्य है कि ओजस्वी, मनस्वी, और तपस्वी स्तर के महापुरुष अपने प्रचण्ड ऊर्जा से वातावरण को गरम करते हैं । विशिष्ट साधना उपचारों द्वारा वातावरण में गर्मी उत्पन्न की जाती है जिसकी व्यापक प्रखरता के दबाव से सब कुछ सहज ही बदलता चला जाता है । शांतिकुंज की स्थापना इन दोनों कसौटियों पर कसने के उपरान्त परम पूज्य गुरुदेव द्वारा १९७१ में की गई/इस स्थान पर कभी गायत्री मंत्र के प्रथम द्रष्टा विश्वामित्र से लेकर भारद्वाज, कश्यप, अत्रि, गौतम, जमदग्नि, वसिष्ठ ऋषि आदि ने ज्ञान–विज्ञान संबंधी महत्वपूर्ण प्रयोग किये थे । उनकी सूक्ष्म एवं दिव्य प्राण ऊर्जा को यहाँ सतत् अनुभव किया जा सकता है ।

हिमालय का प्रवेशद्वार होने के कारण एक ओर शिवालिक पहाड़ियाँ, दूसरी ओर गढ़वाल हिमालय की छत्रछाया उस पर घनीभूत रहती है । भौतिक शक्तियों के धरती पर अवतरण का केन्द्र बिन्दु विज्ञान जगत में ध्रुव प्रदेशों को माना जाता है । अध्यात्म जगत में वैसी ही मान्यता इस हिमालय के प्रवेश द्वार के सम्बन्ध में है । यह दिव्य भूमि दिव्य चेतनाओं का अवतरण केन्द्र है जहाँ सप्तऋषियों ने शोध अनुसंधान एवं तप किया है वस्तुतः जिस स्थान पर गायत्री के ऋषि महर्षि विश्वामित्र ने नूतन सृष्टि सृजन हेतु तप किया था, उसी स्थान पर शांतिकुंज बना है ।

गंगा की गोद–हिमालय की छाया सप्त ऋषियों की तपोभूमि होने के कारण शांतिकुंज के स्थान की विशेषता को आध्यात्मिक त्रिवेणी संगम के समकक्ष कहा जा सकता है । स्थापना के पश्चात् यहाँ चौबीस करोड़ गायत्री जप, अखण्ड दीप के सम्मुख कुमारी कन्याओं द्वारा संपन्न किये गए । नित्य यहाँ २४ लक्ष का जप सतत् चलता रहता है । ६७ वर्ष से जलने वाली अखण्ड–ज्योति की यहाँ अनुपम स्थापना है जिसका दर्शन मात्र समस्त भवबन्धनों आधि–व्याधियों दुःख तापों से मुक्ति दिलाने में समर्थ है । नौ कुण्डों की यज्ञशाला में अनुष्ठानी साधकों द्वारा सहस्राधिक आहुतियों का यज्ञ नित्य होता है ।

स्थानीय निवासी तथा बाहर के आगन्तुक सभी अपनी साधना बड़ी मात्रा में करते हैं, जो प्रतिदिन कितने ही लक्ष मंत्र जप के समकक्ष हो जाती है । दोनों नवरात्रियों में तो यहाँ इतने अधिक साधक हर वर्ष आते हैं, जिन्हें देखकर लगता है कि अभी भी साधना तपश्चर्या के प्रति लोक–निष्ठा समाप्त नहीं हुई । स्थापना से लेकर अबतक जितना जप यहाँ संपन्न हुआ है, उसे देखते हुए इसे गायत्री तीर्थ नाम दिया जाना उचित ही है । दिव्य साधना का सूक्ष्म प्रभाव साधना के दौरान साधकों को स्पष्ट अनुभव होता है । घर में की गई साधना की अपेक्षा यहाँ की साधना जल्दी फलीभूत होती है । परोक्ष प्रभाव वह है जिसमें हिमालय की देवात्मा, सप्तऋषियों का प्रतीक पूजन अदृश्य सत्ताओं को आकर्षित करता रहता है । संस्थापक ऋषियुग्म की तपश्चर्या अपना विशेष प्रभाव उत्पन्न करती है ।

हिमालय की दिव्य सत्ता का संरक्षण, वसिष्ठ अरून्धती के रूप में पूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माताजी का सूक्ष्म एवं स्थूल सान्निध्य , अनुभवपूर्ण मार्गदर्शन तथा प्राणवान अनुदान जैसी ऐसी सुविधाएँ अन्यत्र मिल सकना कठिन है । साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा प्रक्रिया को शिक्षार्थियों के अन्तराल की गहराई तक उतारने की व्यवस्था यहाँ के नौ दिवसीय सत्रों में है । मनोबल और आत्मबल बढ़ाने वाले आहार के साथ दिव्य औषधियों का सेवन भी आवश्यकतानुसार जुड़ा रहता है । ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान में बहुमूल्य यंत्रों द्वारा मूर्धन्य वैज्ञानिक हर शिविरार्थियों की चिकित्सकीय जाँच पड़ताल करते हैं । इन विशेषताओं से स्पष्ट है कि पुरातन तीर्थ स्थानों में जो उच्चस्तरीय विशेषताएँ आदि से अंत तक भरी रहती थीं लगभग वैसा ही वातावरण इस सिद्धपीठ पर विनिर्मित किया गया है ।

महर्षि दयानन्द के गुरु श्री बिरजानन्द जी ने आज से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व ऋषिकेश के दुर्गम क्षेत्र में गंगाजल में खड़े होकर गायत्री साधना की थी । प्रज्ञाचक्षु श्री विरजानन्द जी का गायत्री उपासना पर दृढ़ विश्वास था एवं इसी कारण वे पढ़ न पा सकने के बावजूद अध्यात्म ग्रन्थों के मर्म को गहराई तक जानते थे । उनने ही प्रेरणा देकर भटक रहे दयानन्द को पास बुलाकर शक्तिपात किया था । महर्षि दयानन्द अपने गुरु से गायत्री का ब्रह्मवर्चस् प्राप्त कर ही सारे भारत वर्ष में एक धार्मिक, सामाजिक व राजनीतिक क्रांति का वातावरण बनाने में सक्षम हुए । स्वयं स्वामी जी अपने अनुभव के आधार पर लिखते हैं कि इस महामंत्र द्वारा परमात्मा के तेज का ध्यान करने से बुद्धि की मलिनता दूर हो जाती है । दूसरे किसी मंत्र में ऐसी गहराई और सच्चाई नहीं है ।

आज के अशक्ति, अज्ञान, अभाव से भरे जमाने में जब शक्ति की–बल की उपासना हेतु उचित वातावरण की सबको तलाश है, शांतिकुंज का सभी साधक स्तर की मनोभूमि वाले व्यक्तियों से फलदायी सिद्धिदात्री साधना करने हेतु सहर्ष आमंत्रण है । वर्ष भर चलने वाले नौदिवसीय अथवा एक माह के युगशिल्पी सत्रों में शांतिकुंज हरिद्वार २४९४११ (उ.प्र.) के पते पर पत्र व्यवहार कर भागीदारी हेतु अनुमति प्राप्त की जा सकती है । *

परम प्रेरणाप्रद , फलदायी दैनिक जीवन की गायत्री उपासना

गायत्री महामंत्र में असाधारण शक्ति है । प्रायः सभी अवतार, ऋषि, योगी, मनीषी, तत्वेता गायत्री उपासना के माध्यम से आत्मबल संवर्धन और भावनात्मक उत्कर्ष का प्रयोजन पूरा करते रहे हैं । मंत्र साधना से भौतिक किंवा आध्यात्मिक सिद्धि के क्षेत्र में गायत्री मंत्र की गरिमा सर्वोपरि है । किसी भी भारतीय संस्कृति के अनुयायी को इस महामंत्र की उत्कृष्टता के संबंध में किसी प्रकार का संदेह न रख भावनापूर्वक दैनन्दिन उपासना कृत्यों में इसे स्थान देना चाहिए ।

नियमित उपासना के लिए पूजा स्थली की स्थापना आवश्यक है । इसके लिए स्थान ऐसा हो, जहाँ अपेक्षाकृत अधिक एकान्त हो, आवागमन और कोलाहल कम हो । ऐसे स्थान पर एक छोटी चौकी को पीतवस्त्र से सुसज्जित कर उस पर माँ गायत्री का सुन्दर चित्र स्थापित किया जाय । गायत्री सब देवी देवताओं की शक्ति धाराएँ अपने में समाहित किए आद्यशक्ति– महाशक्ति है । अन्यान्य देवी देवताओं के चित्र भी पूजा स्थली में रखे जा सकते हैं पर वस्तुतः इनकी किसी की जरूरत है नहीं । यदि कोई और देवता किसी के इष्ट हों तो उनका चित्र या मूर्ति भी रह सकती है पर गायत्री का चित्र हर स्थिति में हो क्योंकि शास्त्रों के अनुसार गायत्री के बिना अन्य सभी साधनाएँ निष्फल हैं ।

दैनिक साधना एवं अनुष्ठान उपक्रम में अनेक प्रयोजनों के लिए अनेक मंत्रों का उपयोग लिखा गया है । गायत्री महाविज्ञान के तीनों भाग तथा गायत्री साधना विधि–विधान संबंधी छोटी–छोटी चौबीस पुस्तकों में इन्हें विस्तार से दिया गया है । शुद्ध रूप से इन मंत्रों को याद कर सकना सर्वसाधारण के लिए संभव नहीं है । अतः समय को देखते हुए यह उचित है कि एक गायत्री मंत्र के उच्चारण द्वारा ही विभिन्न प्रयोजनों की पूर्ति कर ली जाय । जिनकी स्मरण शक्ति मंत्रों को शुद्ध रूप से याद कर सकने की है, वे उनका उच्चारण करते हुए सभी विधि–विधानों को पूरा करते रह सकते हैं ।

भारतीय धर्म में त्रिकाल संध्या का विधान है । पर अत्यन्त व्यस्त व्यक्तियों को भी प्रातःकाल नित्यकर्म से निवृत्त होकर एक बार तो उपसना करने के लिए समय निकाल ही लेना चाहिए । प्रयत्न यह करना चाहिए कि आधा घण्टे से लेकर एक घण्टे तक का समय उपासना के लिए मिल सके । निःसंदेह इस प्रयोजन में लगा हुआ समय हर दृष्टि से सार्थक उपासना से होता है , आत्मिक प्रगति उसके फलस्वरूप व्यक्ति का समग्र विकास, उसके द्वारा सर्वतोमुखी समृद्धि की संभावना, यह चक्र ऐसा है, जिससे इस कृत्य में लगाया गया समय सार्थक ही सिद्ध होता है ।

उपासना काल में हर घड़ी यही अनुभूति रहनी चाहिए कि हम भगवान के अति निकट बैठे हैं और साधक तथा साध्य के बीच सघन आदान–प्रदान हो रहा है । साधक अपने समग्र व्यक्तित्व को होम रहा है और वे उसे अपने समतुल्य बनाने की अनुकम्पा प्रदान कर रहे हैं ।

अस्वस्थता की दशा में, सफर में, विधिवत उपासना कृत्य करने की स्थिति न हो तो आत्म शुद्धि, देवपूजन तथा जप, ध्यान आदि सारे कृत्य मानसिक उपासना के रूप में ध्यान प्रक्रिया के सहारे उन कृत्यों को करने की कल्पना करते हुए भी किये जा सकते हैं , उपासना में नागा करने की अपेक्षा इस प्रकार की मानसिक पूजा कर लेना भी उत्तम है । इससे संकल्पित साधना प्रक्रिया को किसी न किसी रूप में अनवरत चलती हुई तो रखा ही जा सकता है ।

दैनिक साधना का क्रम इस प्रकार है–सबसे पहिले आत्मशोधन– की ब्रह्म संध्या का विधान है । इसके पाँच अंग हैं (१) पवित्री करण (२) आचमन (३) शिखा बन्धन (४) प्राणायाम (५) न्यास इनका विधान बहुत सरल है ।

१–पवित्रीकरण–बाएँ हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ से गायत्री मन्त्र पढ़कर उस जल को सिर तथा सारे शरीर पर छिड़कें । पवित्रता रोम रोम में कण–कण में संप्यात हो रही है, यह भावना करें ।

२–आचमन–जल से भरे हुए पात्र में से दाहिने हाथ की हथेली पर जल लेकर तीन बार आचमन करें । प्रत्येक आचमन के पहले पाँच गायत्री मन्त्र पढ़ें । हाथ का स्पर्श मुख से न हो । हो जाय तो उसे ठीक से धो लें ।

आचमन करते समय काया, विचारणा व भावना इन तीनों क्षेत्रों में शांति, शीतलता, सात्विकता के समाविष्ट होने की भावना करें ।

३–शिखा–बन्धन–आचमन के पश्चात् शिखा को जल से गीला करके उसमें ऐसी गाँठ लगानी चाहिए जो सिरा खींचने से खुल जाय, इसे आधी गाँठ कहते हैं । गाँठ लगाते समय गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते जाना चाहिए । शिखा–बन्धन का प्रयोजन ब्रह्मरन्ध्र में स्थित शत–दल चक्र की सूक्ष्म शक्तियों का जागरण करना है । जिसके शिखा स्थान पर बाल न हों, वे तथा महिलायें जल से उस स्थान को स्पर्श कर लें ।

४–प्राणायाम–तीसरा नियम प्राणायाम है । वह इस प्रकार करना चाहिए ।

(अ) स्वस्थ चित्त से मेरुदण्ड सीधा करके बैठिये, मुख को बन्द कर लीजिए, नेत्रों को बन्द या अधखुला रखिये । अब साँस को धीरे–धीरे नासिका द्वारा भीतर खींचना आरम्भ कीजिए, 'ॐ भूर्भुवः स्वः' इस मन्त्र का मन ही मन उच्चारण करते चलिये । भावना कीजिए कि विश्व व्यापी, दुःख नाशक, सुख स्वरूप, ब्रह्म की चैतन्य प्राणशक्ति को मैं नासिका द्वारा आकर्षित कर रहा हूँ , इस भावना और इस मन्त्र के साथ धीरे–धीरे साँस जितनी वायु भीतर भर सकें , भरिये ।

(ब)अब साँस को भीतर रोकिये और 'तत्सवितुर्वरेण्यं' इस मन्त्र भाग का जप कीजिए । साथ ही भावना कीजिए कि नासिका द्वारा खींचा हुआ प्राण श्रेष्ठ है । सूर्य के समान तेजस्वी उसका तेज मेरे अंग–प्रत्यंग में भरा जा रहा है । इस भावना के साथ पहले की अपेक्षा आधे समय तक वायु को रोके रखें ।

(स) अब नासिका द्वारा वायु को धीरे–धीरे निकालना आरम्भ कीजिए और 'भर्गो देवस्य धीमहि' इस मन्त्र भाग को जपिये तथा यह दिव्य प्राण मेरे पापों का नाश करता हुआ विदा हो रहा है, ऐसा मनन कीजिए वायु को निकालने में प्रायः उतना ही समय लगाना चाहिए जितना खींचने में लगा था ।

(द) जब भीतर की वायु बाहर निकल जावे तो जितनी देर वायु को भीतर रोक रखा था उतनी ही देर बाहर रोक रखें अर्थात् बिना साँस लिए रहें और 'धियो योनः प्रचोदयात्' इस मन्त्र भाग को जपते रहें, साथ ही भावना करें कि 'भगवती वेदमाता गायत्री हमारी सद्बुद्धि को जाग्रत कर रही है ।'

यह क्रिया तीन बार करनी चाहिए, जिससे काया के वाणी के, मन के विविध पापों का संहार हो सके ।

५–न्यास–न्यास कहते हैं धारण करने को, अंग–प्रत्यंग में गायत्री की सतोगुणी शक्ति धारण करने, भरने, स्थापित करने, ओतप्रोत करने के लिए न्यास किया जाता है , बाँये हाथ में गायत्री मन्त्र पढ़ते हुए जल लें । पाँचों उँगलियों को मिलाकर उन्हें हर बार जल में डुबोते हुए विभिन्न अंगों का स्पर्श इस भावना से करना चाहिए कि मेरे यह अंग गायत्री शक्ति से पवित्रतम एवं बलवान हो रहे हैं । नीचे लिखे अनुसार मन्त्र बोलते हुए उनसे सम्बधित अंगों का स्पर्श पहले बाँयी और फिर दाँयी ओर का स्पर्श किया जाना चाहिए ।

१–ॐ भूर्भुवः स्वः (मस्तक को) २– तत्सवितुः (नेत्रों को) ३–वरेण्यं (कानों को) ४–भर्गो (मुख को) ५–देवस्य (कण्ठ को) ६–धीमहि (हृदय को) ७–धियो यो नः (नाभि को) ८–प्रचोदयात् (हाथ पैरों को) ९–शेष जल गायत्री मन्त्र पढ़ते हुए सारे शरीर पर छिड़क लें ।

इतना उपक्रम करने के बाद देवपूजन किया जाता है । उपास्य गायत्री को अपना इष्ट मानते हुए जल, अक्षत, पुष्प, धूप–दीप व नैवेद्य इन पाँच प्रतीक समर्पणों के माध्यम से पंचोपचार करें । एक–एक करके एक छोटी तश्तरी में इन पाँचों को पूजा–अभ्यर्थना के उद्देश्य से समर्पित करते चलें । जल का अर्थ है नम्रता–सहृदयता । अक्षत से भावार्थ है – श्रमदान–अंशदान । पुष्प का अर्थ है–प्रसन्नता–उल्लास, प्रगति । धूप–दीप अर्थात् स्वयं जलकर सुगन्ध का आलोक का वितरण, पुण्य परमार्थ । नैवेद्य अर्थात् स्वभाव, चरित्र एवं व्यवहार में सज्जनता का माधुर्य । पाँच उपचारों–कृत्यों के द्वारा व्यक्तित्व को सत्प्रवृत्तियों से सुसम्पन्न करने का संकल्प उभारा जाता है और विश्वास किया जाता है कि परमात्मा के साथ घनिष्टता स्थापित करने के लिए इन्हीं पाँच सत्प्रवृत्तियों को अपनाना आवश्यक है ।

आत्मशोधन व देवपूजन के बाद गायत्री जप का क्रम आता है । जपन्यूनतम तीन माला अर्थात् प्रायः पंद्रह मिनट नियमित रूप से किया जाय । अधिक बन पड़े तो अधिक उत्तम । माला का उद्देश्य घड़ी से भी पूरा हो सकता है । होंठ, कण्ठ, मुख हिलते रहें या आवाज इतनी मन्द हो कि दूसरे इस उच्चारण को ठीक तरह सुन न सकें । जप को एक प्रकार की मलशोधक रगड़ माना जाय । जिस तरह बार–बार घिसने पर

वस्तुएँ चिकनी हो जाती हैं, साबुन रगड़ने से कपड़े व शरीर का मैल छूट जाता है । वर्तनों की सफाई के लिए उन्हें माँजना पड़ता है । कमरे की सफाई के लिए बुहारी लगती है । इसी प्रकार ईश्वर का नाम बार-बार लेने की जप-प्रक्रिया को कषायकल्मषों, कुसंस्कारों का निवारण उपचार मानें । अन्तराल में जीवनक्रम में घुल जाने के लिए ईश्वर को आग्रहपूर्वक आमंत्रित करना ही जप का प्रयोजन है ।

जप से अधिक महत्वपूर्ण है उपासना का अगला चरण "ध्यान" जो जप के साथ चलना चाहिए , शरीर के अंग अवयव जपकृत्य करते चलें । मनको खाली न छोड़ें । ध्यान वस्तुतः परमतत्व में नियोजित रखे रहने के लिए जप के साथ किया जाता है । साकार ध्यान में गायत्री माता के अंचल की छाया में बैठने तथा उसका सुधार भरा प्यार अनवरत रूप से पाने की भावना की जाती है । निराकार ध्यान में प्रभात कालीन स्वर्णिम सूर्य की किरणों द्वारा शरीर में श्रद्धा, मस्तिष्क में प्रज्ञा, काया में निष्ठा के दिव्य अनुदान उतरने की मान्यता परिपक्व की जाती है । इन दोनों में से जो भी प्रिय लगे, अनुकूल पड़े, उसे जप के साथ-साथ उथले मन से नहीं, वरन् सघन विश्वास के साथ यथार्थता भरी अनुभूति के साथ करना चाहिए । जप और ध्यान के समन्वय से ही चित्त एकाग्र रहता है और आत्मसत्ता पर उस कृत्य का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है ।

जप एवं ध्यान की समाप्ति पर विदाई का नमस्कार प्रार्थना करें । गायत्री का कोई स्तोत्र गायत्री चालीसा अथवा सामान्य भाषा में ही भावपूर्वक माँ के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की जाय ।

अन्त में सूर्यार्घ्यदान के साथ पूजा उपक्रम समाप्त होता है । गायत्री का देवता सूर्य है । गायत्री को सूर्य का मन्त्र भी कहा जाता है । जप के समय जलकलश जो एक छोटे लोटे के रूप में स्थापित किया जाता है, समाप्ति पर उसी के जलकी धार सूर्य के सम्मुख खड़े होकर उनको चढ़ायी जाती है । यह पूर्णाहुति है छोटी सी पर इसका महत्व बहुत है । जल अपनी आत्मसत्ता का प्रतीक है और सूर्य समष्टिगत-सर्वगत ब्रह्मसत्ता का प्रतिनिधि जल को अर्थात् अपने व्यक्तित्व को अनवरत गति से भगवान के चरणों पर लोकमंगल के निमित्त समर्पित होने का भाव इस अर्घ्यदान में है । यह समर्पणों की योग-साधना है । चढ़ाया हुआ जल भूमि पर गिरकर सूर्य की गर्मी से भाप बनकर अनन्त आकाश में बिखर जाता है । पीछे वह ओस, बादल आदि बनकर भूमि की वनस्पतियों की आवश्यकता पूरी करते हुए अपने को धन्य बनाता है । सविता देवता से यही अनुदान-वरदान मांगा जाता है कि हमारा व्यक्तित्व अर्घ्यरूप में स्वीकार कर वे हमें बादल बनकर अनन्त में बिखरने की शक्ति एवं सिद्धि सामर्थ्य हमें प्रदान करें ।

इतना सब कृत्य पूरा करने के बाद पूजा स्थल पर आकर विदाई का करबद्ध नमन कर सब वस्तुओं को समेट कर यथा स्थान रख दिया जाय । पूजा-संध्या का यह उपक्रम घर के अन्य लोगों द्वारा भी नित्य संपन्न किया जाय इसकी प्रेरणा देनी चाहिए । कम से कम बच्चे एक माला तो गायत्री मन्त्र की जप ही लें । इतना न कर सकें तो पंचाक्षरी (ॐ भू भुर्वः स्वः) का जप कर लें व इतना भी संभव न हो तो नियमित दस से चौबीस गायत्री मन्त्र लेखन का अभ्यास करें । नियमित उपासना घर में आस्तिकता का वातावरण बनाती है । अनुदान रूप में पारिवारिक सौहार्द्र, भावनात्मक विकास, बौद्धिक प्रगति व सघन-समृद्धि, जो भी कुछ अभीष्ट है, सभी देती है । इसका महत्व युग संधि की वेला में तो अत्यधिक है । इसे भली भाँति समझकर हर धर्मनिष्ठ परिजन को इसे दैनन्दिन जीवन का एक अंग बनाना चाहिए । जिन्हें उपासना क्रम व मन्त्रों आदि का विवरण विस्तार से जानना हो, उन्हें शांतिकुंज हरिद्वार एवं युगनिर्माण योजना मथुरा द्वारा प्रकाशित गायत्री संबंधी साहित्य पढ़ना चाहिए । गायत्री उपासना इस कलियुग में एक संजीवनी, महौषधि के समान है । आसन्न विभीषिकाओं से बचने के लिए यह श्रेष्ठतम न्यूनतम आध्यात्मिक उपचार है । *

मनु की पुत्री 'इला' को 'यज्ञान् काशिनी' नामक उपाधि प्राप्त थी । उसने अपने पिता तक के लिए यज्ञ कराए थे । भारद्वाज की पुत्री श्रुतावती, तपश्विनी सिद्धा, शाण्डिल्य की पुत्री श्रीमती, वेदविद् शिवा, ब्रह्मवादिनी सुलभा, स्वधा की पुत्रियाँ वन्दना और धारिणी आदि अनेक वेदज्ञ महिलाओं का वर्णन महाभारत में आता है । यदि उन्हें वेदों का ज्ञान व अधिकार न होता तो किस प्रकार वे वेदज्ञ कहलातीं ? वस्तुतः गायत्री एवं वेद नारी-नर सबके लिए समान रूप से हैं ।

गायत्री उपासना से जुड़ी शंकाएँ व उनका समाधान

गायत्री मंत्र के संबंध में इन दिनों लोगों में अनेक भ्रान्तियाँ और शंकाएँ विद्यमान हैं । इस संदर्भ में एक शंका यह उठाई जाती है कि उसके कई रूप हैं । कई लोग उसका भिन्न-भिन्न ढंग से उच्चारण करते देखे जाते हैं । वस्तुतः उसका शुद्ध रूप क्या है ? इस संबंध में सारे आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन करने पर निष्कर्ष यही निकलता है कि गायत्री में आठ-आठ अक्षर के तीन चरण एवं चौबीस अक्षर हैं । भूः, भुवः, स्वः के तीन बीज मंत्र ओजस, तेजस, वर्चस, को उभारने के लिए अतिरिक्त रूप से जुड़े हुए हैं । प्रत्येक वेद मंत्र के आरंभ में एक ॐ लगाया जाता है । जैसे किसी व्यक्ति के नाम से पूर्व 'श्री' 'पंडित' जैसे आदर सूचक संबोधन जोड़े जाते हैं, उसी प्रकार ॐकार, तीन व्याहृति और तीन पाद समेत पूरा और सही गायत्री मंत्र वही है , जिसे हम इन दिनों जपते-लिखते हैं । ब्राह्मणों, शूद्रों , क्षत्रियों, वैश्यों के लिए भी यही एक गायत्री मंत्र जपनीय और मननीय है । उनके लिए पृथक्-पृथक् गायत्री मंत्रों का प्रावधान नहीं है जो ऐसा बताते हैं, वह उनकी मनगढ़न्त मान्यता है । वस्तुतः गायत्री का शुद्ध स्वरूप उतना ही है, जितना गायत्री परिवार के लोग जपते और जानते हैं ।

एक अन्य चर्चा जो गायत्री मंत्र के संबंध में की जाती है, वह यह कि गायत्री मंत्र गुप्त है । इसका उच्चारण निषिद्ध है । यह प्रचार वर्ण के नाम पर स्वयं को ब्राह्मण कहने वाले धर्म मंच के दिग्गजों ने अधिक किया है । विशेष कर दक्षिण भारत में यह भ्रान्ति तो सर्वाधिक है । वस्तुतः गुप्त तो मात्र दुरभिसंधियों को रखा जाता है । श्रेष्ठ निर्धारणों को खुले में कहने में कोई हर्ज नहीं । गायत्री में सदाशयता की रचनात्मक स्थापनाएँ हैं । उन्हें जानने समझने का सबको समान अधिकार है । ऐसे पवित्र प्रेरणायुक्त उपदेश को उच्चारणपूर्वक कहने-सुनने में भला क्या हानि हो सकती है ? किसी को पता न चलने देने की बात तो वहीं सोची जाती है जहाँ कोई कुचक्र रचा गया हो, किन्तु जिससे सद्ज्ञान संवर्धन की बात बनती हो, उसका तो उच्च स्वर से उच्चारण होना ही चाहिए । कीर्तन-आरती जैसे धर्म-कृत्यों में वैसा होता भी है ।

स्त्रियों को गायत्री का अधिकार है या नहीं ? यह आशंका सभी उठाते देखे जाते हैं-धर्माचार्य भी तथा शोषक पुरुष समुदाय भी । वस्तुतः नर और नारी भगवान के दो नेत्र, दो हाथ, दो कान, दो पैर के समान मनुष्य जाति के दो वर्ग हैं । दोनों की स्थिति गाड़ी के दो पहियों की तरह मिल-जुल कर चलने और साथ-साथ सहयोग करने की है । दोनों के कर्तव्य और अधिकार समान हैं । प्रजनन प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए एक का कार्य क्षेत्र परिवार दूसरे का उपार्जन-उत्तरदायित्व इस रूप में बँट गये हैं । इस पर भी वह कोई विभाजन रेखा नहीं है । सामाजिक, आर्थिक, साहित्य, राजनीति आदि में किसी भी वर्ग पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, । इसी प्रकार धर्म-अध्यात्म क्षेत्र में-साधना उपासना के क्षेत्र में भी दोनों को स्वभावतः समान अधिकार प्राप्त हैं । इस प्रकार की भेद-भाव भरी मान्यता मध्यकाल के अन्धकार युग की देन है, जिसमें स्त्रियों को हेय, नीच कह कर उनके अधिकार उनसे छीन लिये गये । आज की विवेकशीलता की माँग है कि उन्हें उनके अधिकार वापस दिलाये जायँ , मंत्र जप, गायत्री यज्ञ करना-कराने का उन्हें नर के समान ही अधिकार है व यह प्रयत्नपूर्वक दिलवाने का प्रयास पुरुषार्थ शांतिकुंज ने किया है ।

गायत्री मंत्र कीलित है । उसका उत्कीलन किये बिना उसकी उपासना कैसे की जाय ? यह शंका भी आज के लोगों में समय-समय पर उठती रहती है । इस संबंध में आर्षग्रन्थों ने जो समाधान सुझाया है, वह इस प्रकार है । उनके अनुसार गायत्री उपासना के दो मार्ग हैं एक दक्षिण मार्ग दूसरा वाम मार्ग । एक को वैदिकी दूसरे को तांत्रिकी कहते हैं । तंत्र शास्त्र का हर मंत्र कीलित है-अर्थात् प्रतिबन्धित है । इस प्रतिबंध को हटाये बिना वे मंत्र काम नहीं करते । बन्दूक का घोड़ा जाम कर दिया जाता है, तो उसे दबाने पर भी कारतूस नहीं चलता । मोटर की खिड़की लॉक कर देने पर वह तब तक नहीं खुलती , जब तक कि उसका लॉक हटा न दिया जाय । तांत्रिक मंत्रों

में विघातक शक्ति भी होती है । उसका दुरुपयोग करने पर प्रयोक्ता को तथा अन्यान्यों को हानि उठानी पड़ सकती है । अनधिकारी कुपात्र व्यक्तियों के हाथ में यदि महत्वपूर्ण क्षमता आ जाय, तो वे आग के साथ खेलने वाले बालकों की तरह उसे नाश का निमित्त बना सकते हैं ।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भगवान शंकर ने समस्त तांत्रिक मंत्रों को कीलित कर दिया है । उत्कीलन होने पर ही वे अपना प्रभाव दिखा सकते हैं । तंत्र मार्ग में यह कार्य अनुभवी गुरु द्वारा सम्पन्न होता है । किसी रोगी को क्या औषधि किस मात्रा में देनी चाहिए , इसका निर्धारण कुशल चिकित्सक रोगी की स्थिति का सूक्ष्म अध्ययन करने के उपरान्त ही करते हैं । यही बात मंत्र-साधना के संबंध में भी है । किस साधक को किस मंत्र का उपयोग किस कार्य के लिए किस प्रकार करना चाहिए, इसका निर्धारण ही उत्कीलन है ।

यह तांत्रिक साधनाओं का प्रकरण है । वैदिक-पक्ष में इस प्रकार के कड़े प्रतिबन्ध नहीं हैं, क्योंकि वे सौम्य हैं । उनमें मात्र आत्मबल बढ़ाने और दिव्य क्षमताओं को विकसित करने की शक्ति है । अनिष्ट करने के लिए उनका प्रयोग नहीं होता । इसलिए दुरुपयोग का अंश न रहने के कारण सौम्य मंत्रों का कीलन नहीं हुआ है । उनके लिए उत्कीलन की वह प्रक्रिया नहीं अपनानी पड़ती, जैसी कि तंत्र-प्रयोजनों में । फिर भी उपयुक्त शिक्षा एवं चिकित्सा के लिए उपयुक्त निर्धारण एवं समर्थ सहयोग-संरक्षण की तो आवश्यकता रहती ही है । बिना मार्गदर्शक, बिना सहयोग संरक्षण के एकाकी यात्रा पर चल पड़ने वाले अनुभव हीन यात्री को जो कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं, वे ही स्वेच्छाचारी साधकों के सामने बनी रहती हैं ।

इस दृष्टि से मार्गदर्शन इतनी मात्रा में तो सभी साधनाओं के लिए आवश्यक है कि उन्हें अनुभवी संरक्षण में सम्पन्न किया जाय, स्वेच्छाचार न बरता जाय । जो इस प्रयोजन को पूरा कर सकें समझना चाहिए कि उनकी गायत्री साधना का उत्कीलन हो गया और उनकी सफलता सुनिश्चित हो गई ।

कई जगह ऐसा कहा या सुना जाता है कि गायत्री मंत्र को शाप लगा हुआ है । इसलिए शापित होने के कारण कलियुग में उसकी साधना सफल नहीं होती । ऐसा उल्लेख किसी आर्षग्रन्थ में कहीं भी नहीं है । मध्यकालीन छुट-पुट पुस्तकों में ही एकाध जगह ऐसा प्रसंग आया है । इनमें कहा गया है कि गायत्री को ब्रह्मा, वसिष्ठ और विश्वामित्र ने शाप दिया है कि उसकी साधना निष्फल रहेगी, जब तक उसका शाप मोचन नहीं हो जाता । किन्तु यह प्रसंग बहुत विचित्र एवं असमंजस पैदा करने वाला है पौराणिक उल्लेखों के अनुसार गायत्री ब्रह्माजी की अविच्छिन्न शक्ति है । कहीं-कहीं तो उन्हें ब्रह्मा की पत्नी भी कहा गया है । वसिष्ठ वे हैं, जिनने गायत्री के तत्वज्ञान को देवसत्ता से हस्तगत करके मानवोपयोगी बनाया । विश्वामित्र . इसी गायत्री के अनुग्रह से उसके मंत्रद्रष्टा, साक्षात्कारकर्ता, निष्णात् एवं सिद्ध पुरुष बने । इस प्रकार देखा जाय तो ब्रह्मा, वसिष्ठ और विश्वामित्र तीनों की ही आराध्य एवं शक्ति निर्झरिणी गायत्री ही रही । पौराणिक उल्लेखों के अनुसार इसी गायत्री की उपासना द्वारा ब्रह्मा जी ने बाद में सृष्टि की रचना की ।

ऐसी दशा में ब्रह्मा, वसिष्ठ और विश्वामित्र गायत्री साधना के निष्फल चले जाने का शाप देकर अपने पैरों कुल्हाड़ी क्यों मारेंगे ? स्वयं हतवीर्य क्यों बनेंगे और समस्त संसार को इस कल्पवृक्ष का लाभ उठाने से

हिमालय के उच्च क्षेत्र में उत्तराखण्ड की कन्दराओं में आसन लगाकर बैठे ऋषि विश्वामित्र को तप की अवधि में सूर्य भगवान के समष्टि में व व्यष्टि में अपने हृदय स्थल में दर्शन हुए । प्रत्यक्ष सविता नारायण रूप में उन्हें दिव्य दर्शन दे रहे थे । परम तत्व स्वरूप सविता भगवान का दर्शन करके उनको जो परम चेतना और प्रेरणा मिली, उसके प्रभाव से उनका मुखमण्डल प्रकाशित हो रहा था । उनके मुख से सविता नारायण की महिमा गाने वाले तीन मंत्र निकले, जिनमें प्रथम था-

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ।

ऋग्वेद के दसमण्डल हैं । उनमें से तीसरे मण्डल के ६१७ मंत्रों के द्रष्टा विश्वामित्र ऋषि हैं । उन सभी में श्रेष्ठतम व अनादि मंत्र कहा गया है । यह है गायत्री महामंत्र ।

वंचित क्यों करेंगे ? यह ऐसी अनबूझ पहेली है, जिसका समाधान कहीं से भी नहीं सूझता ।

लगता है मध्यकाल में जब चतुर धर्माध्यक्षों में अपना स्वतंत्र मत चलाने में प्रतिस्पर्धा जोरों पर थी, तब उनने गायत्री की सर्वमान्य उपासना को निरस्त करने के लिए ऐसा प्रपंच रचा होगा और उसे शापित-कीलित होने के कारण निष्फल होने की बात कह कर उसकी सार्वमान्य महत्ता को धूमिल करने एवं लोगों में निराशा, अश्रद्धा उत्पन्न करने का प्रयत्न किया होगा ।

शाप लगने की बात को एक बुझौअल के रूप में अधिक-से अधिक इतना ही महत्व दिया जा सकता है कि वसिष्ठ जैसे विशिष्ट और विश्वामित्र जैसे विश्वमानवता का परिपोषक व्यक्ति, सहयोगी, मार्गदर्शक मिलने पर इस महान-साधना के अधिक सफल होने की आशा है इसके अतिरिक्त इस कथन में और कोई तथ्य नहीं हो सकता । किन्तु यदि कहीं यह असमंजस आड़े आता हो तो बिना किसी उलझन में पड़े "शापभुक्तौभव" मंत्र को दुहरा कर साधना को शापमुक्त हुआ मान लेना चाहिए ।

गायत्री की कृपा से क्या वास्तव में संपन्नता व सफलता मिल सकती है, यह जिज्ञासा किसी के भी मनमें आ सकती है । वस्तुतः यह सब संभव है यदि बीच की कड़ी और जोड़ ली जाय । स्कूल में प्रवेश करने, ऊँचे अफसर या डॉक्टर बनने में अरंभ और अंतकी चर्चा मात्र है, इसके बीच मध्यान्तर भी है, जिसमें मनोयोगपूर्वक लम्बे समय तक नियमित रूप से पढ़ना, पुस्तकों की, फीस की, व्यवस्था करना आदि अनेकों बातें भी शामिल हैं । इस मध्यान्तर को विस्मृत कर दिया जाय, और मात्र प्रवेश एवं पद दो ही बातें याद रहें, तो कहा जायेगा कि यह शेखचिल्ली की कल्पना भर है । यदि मध्यान्तर का महत्व और उस अनिवार्यता का कार्यान्वयन भी ध्यान में हो तो कथन सर्वथा सत्य है । पहलवान मात्र बलिष्ठता की मनोकामना ही नहीं संजोये रहता, न ही "पहलवान-पहलवान" रटते रहने से कोई वैसा बन पाता है । उसके लिए व्यायामशाला में प्रवेश लेकर नियमित व्यायाम, आहार-विहार, तेल-मालिश आदि का उपक्रम भी ध्यान में रखना होता है ।

साधना से सम्पन्नता की सिद्धि या सफलता प्राप्ति के शाश्वत सिद्धान्त पर ये सभी बातें लागू होती हैं । छुट-पुट कर्मकांडों की लकीर पीट लेने पर अभीष्ट सफलता कहाँ मिलती है ? उसके लिए श्रम-साधना, मनोयोग, साधनों का सदुपयोग आदि सभी आवश्यक हैं । इतना सब होने पर अभीष्ट की प्राप्ति होती है ।

इस प्रकार बिना किसी जाति, लिंग, देश, धर्म का अन्तर किये मानव मात्र को गायत्री उपासना करने और उससे लाभान्वित होने का पूरा-पूरा अधिकार है । इस संबंध में अधकचरे ज्ञान के आधार पर उठायी गयी प्रतिगामी टिप्पणियों से अप्रभावित हो, जिन्हें भी आत्मिक प्रगति में तनिक भी रुचि हो, बिना किसी आशंका-असमंजस के श्रद्धापूर्वक गायत्री उपासना करते रहना चाहिए । *

गायत्री साधना से अतीन्द्रिय सामर्थ्य का विकास होता है व परोक्ष के गर्भ में झाँककर अविज्ञात को देखा जा सकता है । ऐसे ही क्षमता संपन्न साधकों में जीवराम व्यास का नाम प्रख्यात है, जिन्हें पानी वाले महाराज नाम से जाना जाता है । महाराष्ट्र के जलगाँव में जन्मे श्री जीवराम बाल्यकाल से ही गायत्री के अनन्य उपासक थे । साधनाकाल में उन्हें अपने हृदय में दिव्य प्रकाश का दर्शन हुआ व प्रेरणा मिली कि परोक्ष दर्शन की क्षमता जो उन्हें प्राप्त है, उसका परमार्थ प्रयोजन के निमित्त उपयोग हो ।

भूगर्भ में छिपे पानी के स्रोतों को अपनी दिव्य दृष्टि से वे देख लेते थे व कहाँ कूआँ खोदा जाना चाहिए, यह बताकर पानी का अभाव दूर करते थे । फरीदाबाद में जल विभाग के वैज्ञानिकों ने घोषणा कर दी थी कि उनके यंत्रों के अनुसार अब कहीं पानी भूगर्भ में नहीं है किन्तु पानी वाले महाराज ने दिव्य दृष्टि से ऐसे आठ स्थानों को खोजा । प्रत्येक से हजारों गैलन पानी अभी भी रोज निकलता है । सौराष्ट्र की जनता तो ऐसे स्रोत बताने के लिए उनकी विशेष आभारी है । वस्तुतः साधना तभी सार्थक व फलवती होती है, जब मानवमात्र के लिए उसका उपयोग हो ।

गायत्री सावित्री और सविता

गायत्री मंत्र की व्याख्या का विस्तार चारों वेदों के रूप में हुआ, इसी से गायत्री को वेदमाता कहते हैं, वेदों के प्रत्येक मंत्र का एक छन्द, एक ऋषि और एक देवता होता है। उनका स्मरण-उच्चारण करते हुए विनियोग किया जाता है। गायत्री महामंत्र का गायत्री छन्द, विश्वामित्र ऋषि और सविता देवता है। बोलचाल की भाषा में सविता को सूर्य कहते हैं। सविता की अधिष्ठात्री होने के कारण गायत्री का दूसरा नाम सावित्री भी है। सविता और सावित्री का युग्म माना गया है, प्राथमिक उपासना में गायत्री का मातृसत्ता के दिव्य शक्ति के रूप में नारी कलेवर रूप में निर्धारण हुआ है। मानवी आकृति में उसे देवी की प्रतीक-प्रतिमा के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है। यह उचित भी है। इसमें पवित्रता, सहृदयता, उत्कृष्टता, सद्भावना, सेवा-साधना जैसे मातृशक्ति में विशिष्ट रूप से पाये जाने वाले गुणों का साधक को अनुदान मिलता है। इस प्रतीक पूजा से नारी तत्व के प्रति पूज्य भाव की सहज श्रद्धा उत्पन्न होती है। अस्तु इस चिन्तन के इस दिव्य प्रवाह को यदि अलंकारिक रूप से नारी के रूप में चित्रित किया गया है, तो उसे उचित ही कहा जा सकता है। इस प्राथमिक प्रतिपादन के रूप में प्रस्तुत किये गये नारी-विग्रह से भी गायत्री महाशक्ति के उच्चस्तरीय स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता।

इसकी साकार उपासना में भी गायत्री माता का ध्यान सदा सूर्य मंडल के मध्य में विराजमान महाशक्ति के रूप में किया जाता है। साथ ही गायत्री माता के नारी स्वरूप को सूर्य मंडल के बीच प्रतिष्ठित-चित्रित किया जाता है। निराकार उपासना करने वाले चिदाकाश एवं महदाकाश में प्रतिष्ठित तेज मंडल के रूप में उसका ध्यान करते हैं। उपासना का क्रम निराकार हो अथवा साकार, दोनों ही स्थितियों में सूर्यमंडल की स्थापना अनिवार्य रूप से रहेगी। प्रकाश के तेजोबलय को समन्वित किये बिना गायत्री महाशक्ति का ध्यान हो ही नहीं सकता। गायत्री उपासना के अन्त में सूर्यार्घ्यदान के रूप में जप की पूर्णाहुति की जाती है। उपासना के समय दीपक की, अगरबत्ती की, अग्नि स्थापना की आवश्यकता भी सूर्य शक्ति का प्रतिनिधित्व रखने के रूप में ही की जाती है। यज्ञाग्नि में आहुति देने का विधान भी गायत्री पुरश्चरणों का अंग है। इसमें भी दूरस्थ सूर्य की निकटस्थ प्रतिनिधि के रूप में प्रतिष्ठा करने की भावना है।

सविता और सावित्री की युग्म-भावना एक कल्पना पर नहीं, तथ्यों पर आधारित है। अग्नि तत्व से बना दृश्यमान सूर्य तो चेतन सविता देव का स्थूल प्रतीक भर है। प्रतीक पूजा का स्वरूप ही यह है कि जड़ पदार्थों के माध्यम से चेतनात्मक प्रशिक्षण की आवश्यकता पूरी करायी जाय। सविता चेतना ब्रह्मतेज को कहते हैं। वह अदृश्य है। ब्रह्माण्डीय चेतना के रूप में, दिव्य प्रखरता के रूप में सर्वत्र व्यापक और विद्यमान है। उसी के साथ आत्मचेतना की घनिष्टता बढ़ाने के लिए प्रतीक रूप से सूर्य अग्निपिण्ड ध्यान साधना में प्रयुक्त किया जाता है। प्रकारान्तर से सूर्य उपासना का तात्पर्य ब्रह्मतेज की अवतरण प्रक्रिया आत्मचेतना की पृष्ठभूमि पर सम्पन्न कराना है। आत्मा को पृथ्वी और ब्रह्मतेज को सूर्य की उपमा दी जा सकती है। पृथ्वी पर जो जीवन दृष्टिगोचर होता है, वह सूर्य का ही अनुदान है। सूर्य को जगत की आत्मा बताया गया है। पृथ्वी पर जिस तरह सूर्य केन्द्र से जीवन बरसता है, उसी प्रकार आत्मा रूपी पृथ्वी पर ब्रह्मसत्ता के प्राण तेज की वर्षा होती है। इसी से अन्तःभूमि पर विभूतियों की हरीतिमा उगती और फूलती-फलती है। गायत्री के साथ उनके देवता सविता का अन्योन्याश्रय संबंध इसी आधार पर जुड़ा हुआ है। गायत्री का दूसरा नाम सावित्री सविता की शक्ति, ब्रह्मशक्ति होने के कारण ही रखा गया है।

शास्त्रों में गायत्री को प्राण, प्राण को सविता कहा गया है। इस त्रिकोण विवेचन से गायत्री के सवितामय होने का ही निष्कर्ष निकलता है। गायत्री सद्बुद्धि की, ऋतम्भरा प्रज्ञा की देवी है। प्राण और सविता को भी इन्हीं प्रयोजनों की पूर्ति करने वाला बताया गया है। शास्त्र वचनों में इस त्रिकोण को रेखागणित के त्रिभुज

की तरह एक-दूसरे के साथ जुड़ा हुआ समझा जा सकता है । कहा भी गया है-

यो वै सः प्राण एषा सा गायत्री

(शतपथ १/३/५/३५)

अर्थात् जो प्राण है, उसे ही निश्चित रूप से गायत्री जानना ।

अन्यत्र उल्लेख मिलता है-

प्राण एव सविता विद्युत्तरेव सविता

(शत. ७/७/९)

अर्थात् प्राण ही सविता है, विद्युत ही सविता है ।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि सविता तेज को भौतिक अग्नि अथवा प्रकाश न मान लिया जाय, इसलिए यह स्पष्टीकरण आवश्यक समझा गया कि यह 'तेजस्' विशुद्ध रूप से ब्रह्मतत्व का है । सविता तेज को, ब्रह्मतेज के अतिरिक्त और कुछ समझ बैठने की भूल किसी अध्यात्म विद्या के छात्र को नहीं ही करनी चाहिए । आप्त ग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि गायत्री का देवता-सविता-सूर्य विश्व के जीवन का ज्ञान और विज्ञान का केन्द्र भी वही है । चारों वेदों में जो कुछ है, वह सब भी इस सविता शक्ति का विवेचन मात्र है । तप, श्रद्धा और साधना के द्वारा योगीजन इसे ही प्राप्त करने में संलग्न रहते हैं । नाम रूप सुविधानुसार कुछ भी माना जाय, पर वस्तुतः वह सविता देवता ही सब का उपास्य है, उसी के तेज को-ब्रह्मतेज को प्राप्त करने के लिए प्रत्येक साधक को प्रयत्नशील होना पड़ता है ।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने इसी सविता की उपासना का विधान वर्णन करते हुए उसकी महत्ता, विशेषता एवं उपलब्धियों का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित शब्दों में इस प्रकार उल्लेख किया है-

"मैं ऊँकार स्वरूप भगवान को नमस्कार करता हूँ । हे भगवान ! आप ही समस्त जगत की आत्मा और काल स्वरूप हैं । समस्त प्राणी, चर-अचर में आप ही संव्याप्त हैं ।"

सविता की असाधारण रहस्यमयी शक्तियों का, सावित्री का उपयोग हम यंत्रों के माध्यम से तो कर ही रहे हैं, चाहें तो तंत्र और मंत्र योगों द्वारा भी वैसे ही लाभ उठा सकते हैं, जैसे कि भौतिक विज्ञान वाले उठा रहे हैं या उठाने की बात सोच सकते हैं । सूर्य का प्रयोग भौतिक जीवन में सुविधाएँ बढ़ाने के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध होता रहा है । आगे यह उपयोगिता और भी बढ़ने की संभावना है ।

असली सविता जो गायत्री मंत्र का देवता है, इस उदीयमान सूर्य से भी ऊँचा है । उसे असंख्य सूर्यों का सूर्य, परमशक्ति स्रोत, इस सृष्टि का नियामक, पोषणदाता, विधाता, प्रजापति कहा जाता है । उसके साथ संबंध संपर्क बनाकर यदि सान्निध्य-लाभ किया जा सके , तो दृश्य सूर्य की अपेक्षा वह आध्यात्मिक सविता हमारे लिए असंख्य गुने सुख-साधन प्रस्तुत कर सकता है । परमात्मा की, परमशक्ति गायत्री की, सविता की अविच्छिन्न क्षमता सावित्री की उपासना करके हम वह लाभ ले सकते हैं , जिसके लिए यह मानव शरीर उपलब्ध हुआ है । वस्तुतः गायत्री उपासना सावित्री साधना ही हमारा जीवन लक्ष्य हो सकता है, होना चाहिए ।

ऐसा भ्रम किसी को नहीं करना चाहिए कि गायत्री से सावित्री भिन्न हो सकती है । एक ही शक्ति के दो नाम है । जब वह शक्ति भौतिक प्रयोजन की पूर्ति के लिए प्रयुक्त की जाती है, तब उसे सावित्री कहते हैं और जब वह आध्यात्मिक प्रयोजनों के लिए काम आती है, तब उसी को गायत्री कहने लगते हैं । मृत शरीर को जलाते समय जो अग्नि जलती है, वह "लोहिता" और भोजन बनाने की भट्टी में जलने वाली को "रोहिता" कहते हैं । लोहिता और रोहिता-यह दो नाम प्रयोग में आने वाले विभाजन के अनुरूप हैं । वस्तुतः अग्नि एक ही है । इसी प्रकार उस महाशक्ति को परा-अपरा, सावित्री और गायत्री के नाम से पहचाना जाता है । सविता तत्व के साथ संबंद्ध होने के कारण उसे सावित्री कहा गया है । सावित्री का देवता होने के कारण उस परमतत्व को सविता कहते हैं । यह सावित्री का ही स्वरूप है । गायत्री में जिस वरेण्य, भर्गदेव, सविता का स्मरण-चिन्तन किया जाता है, वह परम तेजस्वी , सर्वशक्तिमान, सर्वेश्वर सविता-प्रसविता परमात्मा ही है । उस परमात्मा की सर्वतोमुखी-सर्वोपरि शक्ति को चाहे गायत्री कहें या सावित्री-वस्तुतः एक महत्व से उसका प्रयोजन है । कहा भी गया है -

नमस्ते देवि गायत्री सावित्री त्रिपदेक्षरे ।

(वसिष्ठ संहितार्य वांत्रिक)

हे ! तीन पदों वाली गायत्री-सावित्री देवी, हम तुम्हें नमस्कार करते हैं ।

दैविक, दैहिक और भौतिक इन तीन क्षेत्रों में सावित्री का आधिपत्य होने के कारण ही उसे तीन पाद

वाली कहा गया है । कहते हैं कि वामन भगवान ने तीन चरणों में राजा बलि के तीनों लोकों वाले राज्य को नाप लिया था । सावित्री के तीन पाद भी तीनों लोकों तक लम्बे हैं, अर्थात् उनके प्रभाव से तीनों लोकों में अपनी स्थिति सुख–शान्तिमय बनती है । तीन लोक आकाश, पाताल और पृथ्वी को भी कहते हैं , पर यहाँ दैविक, दैहिक भौतिक अर्थात् आध्यात्मिक शारीरिक, और सम्पत्तिपरक तीनों ही क्षेत्रों में सावित्री का प्रकाश पहुँचता है और उस महाशक्ति की उपासना से इन सभी क्षेत्रों में आनन्द–उल्लास की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं ।

आप्त वचनों में सावित्री को षट्कुक्षि और पाँच मस्तक वाली कहा गया है । यहाँ षट्कुक्षि का तात्पर्य षट्चक्र जागरण से है । शरीर में छिपे हुए छहों शक्ति संस्थान सावित्री उपासना से जाग्रत हो जाते हैं । किसी मशीन में यदि छः इंजन हों और वे सभी बन्द हों, तो पूरी मशीन ही ठप्प हो जायेगी, किन्तु एक–एक कर यदि वे सभी चलने लगें तो मशीन अपनी पूरी रफ्तार से चलने लगेगी । सावित्री के षट्कुक्षि का यही आशय है । इससे शरीर के छहों चक्र जाग्रत हो जाते हैं । इसलिए उसे छः कुक्षि वाली–छः साधनाओं वाली बताया गया है । सावित्री के पाँच मस्तक शरीर के पाँच शक्ति कोशों के प्रतीक प्रतिनिधि हैं ।

सावित्री का दूसरा नाम गायत्री के अर्थ पर जब हम विचार करते हैं , तो ज्ञात होता है कि यह "गय"– और "त्री" दो शब्दों के मेल से बना है । गय अर्थात् प्राण और त्री अर्थात् त्राण इस प्रकार गायत्री का समग्र अर्थ हुआ–प्राणशक्ति का उत्थान करने वाली विद्या । अपने देवता सविता से गायत्री महामंत्र में प्राण शक्ति अभिप्रेत होती है और उसी का एक अंश अपने में धारण करके गायत्री उपासक स्वयं को धन्य बनाता है ।

यह भ्रम किसी को नहीं करना चाहिए कि गायत्री मंत्र की शक्ति अग्नि पिण्ड रूपी सूर्य पर अवलम्बित है । यह तो रोशनी और गर्मी मात्र देता है । यह सब तो बिजली की मशीनों से भी प्राप्त किया जा सकता है । इतने मात्र के लिए किसी उपासना की क्या आवश्यकता थी ? गायत्री सूर्य की आत्मा–सविता शक्ति के साथ साधक को जोड़ती है, जिसके द्वारा वह परब्रह्म महाप्राण को अपने शरीर और अन्तःकरण में आवश्यक मात्रा में धारण करके लौकिक सुख एवं आत्मिक शान्ति को अनुभव करता हुआ जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है ।

यह महाप्राण जब शरीर क्षेत्र में अवतीर्ण होता है, तो आरोग्य, आयुष्य, तेज, ओज, बल, पराक्रम पुरुषार्थ के रूप में दृष्टिगोचर होता है । जब वह मनःक्षेत्र में अवतीर्ण होता है, तो उत्साह स्फूर्ति, प्रफुल्लता, साहस, एकाग्रता, स्थिरता, धैर्य, संयम आदि गुणों के रूप में देखा जाता है । जब उसका अवतरण आध्यात्मिक क्षेत्र में होता है, तो तप त्याग, श्रद्धा, विश्वास, दया, उपकार, प्रेम, विवेक आदि के रूप में दिखाई देता है । तीनों ही क्षेत्र उस महाप्राण से जैसे–जैसे भरते हैं, वैसे ही मनुष्य अपूर्णता से पूर्णता की ओर, लघुता से विभुता एवं तुच्छता से महानता की ओर बढ़ने लगता है । आत्म कल्याण का लक्ष्य–प्राप्ति का यही मार्ग है । गायत्री के द्वारा सविता देवता को , महाप्राण को, उपलब्ध करने का प्रयोजन यही है ।

महाराष्ट्र के अकोला जिले में बाबा रामभरोसे नाम के एक सन्त हुए हैं । महाराष्ट्र में गायत्री उपासना के सर्वाधिक प्रचार–प्रसार का श्रेय उन्हीं को दिया जाता है ।

बाबा रामभरोसे जन्म से मुसलमान थे । नाम उनका कुतुबशाह था । एक दिन एक गाँव से दूसरे गाँव जारहे थे तो रात्रि में मार्ग भटक जाने के कारण एक शिवालय में सो गए । रात में उन्हें एक विलक्षण स्वप्न दीखा जिसमें एक साधु वेशधारी महात्मा ने उन्हें पूर्वजन्मों की जानकारी करायी व कहा कि तुम गायत्री उपासना करो । उसी से तुम्हारा उद्धार होगा । पूर्वजन्म के संबंधी भी तुम्हें अमुक गाँव में मिलेंगे । अगले दिन रिश्तेदारी में जाने पर सब बातें सच निकलीं । मथुरा आकर परमपूज्य गुरुदेव से (जिन्हें उनने स्वप्न में देखा था) गायत्री मंत्र की विधिवत् दीक्षा ली और दस वर्ष तक अनवरत साधना पुरश्चरण कर माँ का साक्षात्कार किया । सैकड़ों विधर्मियों को बाबा रामभरोसे ने गायत्री उपासना की प्रेरणा दी ।

सविता देवता यद्यपि सूर्य का ही दूसरा नाम है, पर यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि जो अन्तर शरीर और आत्मा का है, वही सूर्य और सविता का है । गायत्री महामंत्र का देवता सूर्य वही महाप्राण है, जिसका विवेचन शास्त्रों में स्थान–स्थान पर विस्तारपूर्वक किया गया है । इस प्रकार गायत्री–सावित्री एक ही सविता शक्ति की उपासना के दो भिन्न नाम हैं–इसे भली भाँति हृदयंगम कर लिया जाना चाहिए । ✳

गायत्री के सिद्धसाधक बूटी सिद्ध महाराज

सृष्टि के आदि कालीन ऋषियों से लेकर आधुनिक संत महापुरुषों तक जिनने भी तपश्चर्या एवं योग–साधना की है, उनने गायत्री को ही आधार रखा है । प्राचीन इतिहास पुराणों के पन्ने पलटे जायें तो यह तथ्य स्पष्ट हो जायगा कि सभी प्रमुख ऋषि–महर्षि गायत्री के आधार पर ही परम सिद्धि प्राप्त करते थे । वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, भारद्वाज आदि सप्तर्षियों सहित समस्त ऋषि–मनीषियों ने वेदमाता की उपासना करके किस प्रकार दिव्य शक्तियाँ अर्जित की थीं और उसके द्वारा वे कितनी महान सफलतायें उपलब्ध कर सके थे, इतिहासवेत्ताओं से इनके चरित्र छिपे नहीं हैं ।

पिछले दिनों भी भारतभूमि में ऐसे अनेकों सिद्ध–संत–महात्मा हुए हैं जिनने गायत्री महाशक्ति का आश्रय लेकर अपनी प्रतिभा को प्रकाशित किया और आत्मकल्याण तथा लोक मंगल के कार्यों में निरत रहकर महापुरुषों की श्रेणी में जा विराजे । उन्हीं में से एक गायत्री उपासक दिव्यात्मा बूटी सिद्ध जी महाराज हैं ।

घटना उन्नीसवीं सदी की है । अलवर राज्य के एक अति सामान्य परिवार में जन्मे एक व्यक्ति ने अदृश्य की प्रेरणा से युवावस्था में घर बार छोड़कर सन्यास ले लिया और मथुरा आकर एक टीले पर रहने लगा । गायत्री उपासना में उसकी अभिरुचि तो बचपन से ही थी, पर यहाँ आकर माता में ऐसी लगन लगी कि उन्हीं की आराधना में वह निमग्न हो गया । यहीं पर उनने कई पुरश्चरण किये और गायत्री की सिद्धि प्राप्त की । किशोरी रमण कालेज के पास स्थित, जिस टीले पर वह रहे, वह स्थान आज 'गायत्री टीला' के नाम से जाना जाता है । इसी टीले पर आज एक पंचमुखी कमलासन गायत्री माता की प्रतिमा भी प्रतिष्ठापित है ।

बाबा बूटी सिद्ध इतने विख्यात थे कि उनके पास दर्शनार्थियों और मुलाकातियों का आना जाना हमेशा बना ही रहता था । उनका स्वभाव था कि वे किसी से कुछ माँगते नहीं थे, यहाँ तक कि उन्हें अपने भोजन की भी चिन्ता नहीं रहती थी । भूखे रह लेते थे, पर किसी से कुछ माँगते नहीं थे । इस व्रत के कारण उन्हें कई बार भूखे ही रह जाना पड़ता था । लोग उनके पास आते जाते थे, परन्तु उनका उद्देश्य बाबा से आशीर्वाद पाना और अपना मतलब सिद्ध करने तक ही सीमित रहता था । बाबा से अपने मतलब की बात की और चलते बने ।

बाबा लोगों के इस स्वभाव को अच्छी तरह समझते थे और कई बार उनके आचरण पर हँसने लगते थे । करुणावत्सल उदार संत स्वभाव के कारण वे यथाशक्ति उनकी मदद ही करते थे । एक बार बाबा को पाँच छह दिन से भोजन नहीं मिला था । भिक्षा माँगने वे जाते नहीं थे और किसी से कुछ माँगने की उनकी आदत नहीं थी । छठवें दिन रामकली नामक एक महिला उनके लिए भोजन लेकर आयी और थाल उनके सामने रख दिया । बाबा ने कहा–बेटी । सब ठीक तो है न ?' "आपकी दया चाहिए महाराज," रामकली ने आर्द्र स्वर में कहा ।

बाबा ने आँखें मूँदी और कुछ देर तक चुपचाप मौन ध्यान लगाये बैठे रहे । कुछ देर बाद आँखें खोलीं और बोले "बेटी सब कुछ जान लिया । तुम्हारे पति की तबियत बहुत ज्यादा खराब है । वैद्यों ने मर्ज को लाइलाज करार दिया है । है न ?"

"आप तो अन्तर्यामी हैं महाराज ! आप से क्या छिपा हुआ है , अब आप का ही सहारा है ।"

'चिन्ता मत कर.' यह कहकर बाबा उठे । रामकली ने कहा–महाराज पहले भोजन तो कर लीजिए ।

भोजन तो हो जायेगा बेटी, पर तेरा पति बहुत दुख पा रहा है । उसकी पीड़ा दूर होनी चाहिए –महाराज ने कहा और उठकर झोंपड़ी में एक कील से टंगी झोली के पास गये । झोली उतारी और उसमें से एक जड़ी निकालकर वापस यथास्थान बैठ गये । कुछ देर तक उस जड़ी को मुट्ठी में बन्द कर कोई मंत्र बुदबुदाते रहे और रामकली को देते हुए कहा "जा इसे अभी पीसकर उसे पिला दे । भगवती की कृपा से सुबह तक ठीक हो जायेगा और कल शाम को तुम दोनों यहाँ मेरे पास आना ।"

रामकली वहाँ से चल दी । घर आकर देखा तो उसके पति की दशा पहिले से भी ज्यादा बिगड़ी हुई थी । आखिरी साँसें गिन रहा था । मुँह से आवाज नहीं निकल रही थी । रामकली ने जल्दी–जल्दी में जड़ी को पीसा और बड़ी मुश्किल से अपने पति के मुँह में उड़ेला । औषधि कंठ से नीचे पहुँची तो उसने आँखें बंद कर लीं । यह क्या ? दशा तो और भी ज्यादा बिगड़ती सी प्रतीत हो रही थी ।

हाँथ–पाँव ठंडे पड़ने लगे थे । रोगी अचेत हो चुका था । नाड़ी भी डूबती जा रही थी । यह स्थिति कोई एक घंटे तक रही । फिर रोगी की दशा में चमत्कार की तरह सुधार होने लगा । उसने आँखें झपकाईं और आँख खोलकर पास खड़े एक व्यक्ति की ओर देखने लगा जैसे बता रहा हो कि मैं मौत के मुँह से वापस आ गया हूँ और दूसरे दिन शाम को तो उसने स्वयं पैदल बाबा के टीले पर चलने की इच्छा व्यक्त की ।सम्बन्धियों ने उसके स्वास्थ्य की दुर्बलता को ध्यान में रखते हुए सहारा देकर उसे वहाँ तक पहुँचाया और बूटी सिद्ध महाराज के दर्शन कराये ।

इस तरह की एक नहीं सैकड़ों घटनायें बूटी सिद्ध महाराज के संबंध में प्रसिद्ध हैं । उनके पास जो कोई भी अपनी आधि–व्याधि लेकर जाता था, उसे वे अपनी एक छोटीसी झोली में से जड़ी–बूटी निकाल कर देते थे और वह सेवन करने के पश्चात् भला चंगा हो जाता था । इसी कारण उनका नाम 'बूटी सिद्ध ' पड़ गया । असली नाम क्या था ? किसी को नहीं मालूम । वे अपने पूर्व जीवन के संबंध में किसी को कुछ नहीं बताते थे । बताने की आवश्यकता भी नहीं थी , क्योंकि उन्हें ख्याति प्राप्त करने का कोई चाव नहीं था । जब से उन्होंने घर बार छोड़ कर सन्यास लिया और मथुरा आकर उस टीले पर रहने लगे तब से वे कहीं नहीं गये । एक मात्र टीले तक ही उन्होंने अपना भौतिक संसार सीमित कर लिया था । उसी टीले पर उनकी एक गुफा थी, जिसमें घुस जाने के बाद वे हफ्तों तक बाहर नहीं निकलते थे । गुफा में ही समाधि लगाये रहते । बाद में यही टीला गायत्री टीला' नाम से विख्यात हुआ ।

सिद्धि प्राप्त होने के बाद बाबा ने मौनव्रत ले लिया और मृत्यु पर्यन्त मौन ही रहे । उन्होंने अपने आशीर्वाद से कई मरणासन्न व्यक्तियों को पुनर्जीवन प्रदान किया, निस्सन्तानों को संतान दी और धनहीनों को धन लाभ कराया । कहा जा चुका है कि वे पूरी तरह अपरिग्रही और अकिंचन थे । भौतिक संपदा उनके पास कुछ भी न थी, फिर भी उन्होंने कई बार ऐसे भण्डारे किये जिनमें दस–दस हजार लोगों ने भोजन किया । इस भण्डारे के लिए धन की व्यवस्था कहाँ से होती थी ? यह किसी को नहीं मालूम । किसी से कुछ याचना करते हुए तो उन्हें किसी ने देखा ही नहीं था । फिर धन का प्रबन्ध कहाँ से होता था, यह लोगों के लिए रहस्य ही बना रहा ।

बूटी सिद्ध महाराज की दिव्य चमत्कारी क्षमताओं के बारे में अनेक कथायें प्रसिद्ध हैं । उनकी सिद्धियों और शक्तियों की ख्याति आस–पास के सभी क्षेत्रों में फैल गयी थी । महाराज धौलपुर और महाराज अलवर उनकी सिद्धियों की चर्चा सुनकर कई बार उनके पास आये थे और उनके दर्शन से लाभान्वित हुए थे । दूर–दूर से लोग उनके दर्शनों के लिए आते थे और जिन्होंने भी उनके दर्शन किये थे , उनका कहना था कि महाराज के मुखमण्डल पर अद्वितीय और अलौकिक तेज रहता था । जब वे मौन रहने लगे तब भी उनके पास कोई शंका, कोई जिज्ञासा लेकर पहुँचने वालों का समाधान आप ही आप हो जाता था ।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस का उपदेश है–"मैं लोगों से कहता हूँ कि लम्बी लम्बी साधना करने की उतनी जरूरत नहीं है । इस छोटी सी गायत्री का जप करके देखो । गायत्री का जप करने से बड़ी बड़ी सिद्धियाँ मिल जाती हैं । यह मंत्र छोटा है, पर इसकी शक्ति भारी है ।"

बाबा ने अपने उपदेशों से कई लोगों को गायत्री उपासना में प्रवृत्त किया । मौन रहने पर भी वे आध्यात्मिक उत्कर्ष के आकांक्षी व्यक्तियों को लिखकर या संकेतों से गायत्री माता की शरण में जाने का उपदेश देते थे, लेकिन यह आश्चर्य की बात है कि हजारों लोगों को गायत्री उपासना में प्रवृत्त करने के बाद भी उन्होंने विधिवत् किसी को शिष्य नहीं बनाया । इस सम्बन्ध में उनका यही कहना था कि सबका गुरु परम पिता परमात्मा है, उस का प्रतिनिधि अपने भीतर ही छिपा बैठा है । उसी की शरण में जाने से कल्याण है । व्यक्ति तो माध्यम भर हो सकता है । वस्तुतः गायत्री महाशक्ति की महिमा अपरम्पार है, जो इसे निष्ठापूर्वक अपनाता है सिद्धियाँ स्वतः उस पर बरसने लगती हैं । अनेक तपस्वी साधकों में बूटी सिद्ध महाराज का नाम गायत्री के सिद्धसाधक के नाम में हमेशा अमर रहेगा ।*

असामान्य सुयोग उपलब्ध कराने वाली नवरात्रि की साधना

प्रकृति जगत में ऋतुएँ वर्ष में दो बार ऋतुमती होती हैं । सर्दी और गर्मी प्रधानतः दो ही ऋतुएँ हैं । वर्षा इनके बीच आँखमिचौनी खेलती रहती है । इन दोनों प्रधान ऋतुओं का ऋतुकाल, जब प्रकृति का रज तत्व अपने पूरे यौवन पर होता है, नौ–नौ दिन का होता है । इस संधिकाल को जिसमें दो ऋतुएँ मिलती हैं, नवरात्रि कहते हैं , कालचक्र के सूक्ष्म ज्ञाताओं ने प्रकृति के अन्तराल में चल रहे विशिष्ट उभारों को देखकर ऋतुओं के मिलन काल की संधिवेला को आश्विन और चैत्र की नवरात्रियों के रूप में अति महत्वपूर्ण बताया है ।

रात्रि और दिन का मिलन प्रातःकालीन और सायंकालीन "सन्ध्या " के नाम से प्रख्यात है । इस मिलन वेला को मनीषियों ने अध्यात्म उपचारों की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण माना है । मिलन की वेला हर क्षेत्र में उल्लास से भरी होती है । मित्रों का मिलन, प्रणय मिलन, आकांक्षाओं और सफलताओं का मिलन कितना सुखद होता है, सभी जानते हैं । इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि आत्मा और परमात्मा का मिलन कितना तृप्तिदायक व आनंददायक होगा । पुराना वर्ष विदा होते ही नया वर्ष आता है । यह दिन बड़े उल्लास के साथ मनाया जाता है । कृष्ण पक्ष और शुक्लपक्ष के परिवर्तन के दो दिन अमावस्या एवं पूर्णिमा पर्वों के नाम से जाने जाते हैं । अधिकांश पर्व इसी संधिवेला में मनाये जाते हैं । दीपावली, होली, गुरुपूर्णिमा, रक्षाबंधन, हरियाली अमावस्या, शरदपूर्णिमा जैसे प्रधान–प्रधान पर्व इन्हीं ऋतुसंध्या में आते हैं । नवरात्रि की ऋतुसंध्या का महत्व भी इसी प्रकार बताया गया है ।

जब भी ऋतु परिवर्तन होता है, कई प्रकार की सूक्ष्म हलचलें दृश्य प्रकृति व परोक्ष जगत में होती हैं । चैत्र में मौसम ठण्डक से बदलकर गर्मी का रूप लेता है व आश्विन में गर्मी से बदलकर ठण्डक का । वैसे यह परिवर्तन क्रमिक गति से समय तो अधिक लेता है परन्तु इन नौदिन विशेषों में प्रकृति का सूक्ष्म अन्तराल व मानवी काया का सूक्ष्म कलेवर एक विशिष्ट परिवर्तन प्रक्रिया से गुजरता है । शरीर में ज्वार–भाटे जैसी हलचलें उत्पन्न होती हैं और जीवनी शक्ति पूरी प्रबलता से देह में जमी विकृतियों को हटाने के लिए तूफानी स्तर का संघर्ष करती है । वैद्यगण इसे लाक्षणिक उभार काल कहते हैं । बहुधा बीमारियाँ इन्हीं समयों पर अधिक होने की संभावना रहती है किन्तु शोधन–विरेचन आदि के उपचार इन दिनों ही कराए जाने पर विशिष्ट सफलता प्राप्त करते देखे जाते हैं । कायाकल्प के पंचकर्म इसी कारण इन्हीं दिनों संपन्न किए जाते हैं । नीम का, गिलोयका, घृत कुमारी एवं अश्वगंधा का सेवन इन्हीं विशेष दिनों में रोग निवारण एवं स्वास्थ्य संवर्धन का द्विमुखी प्रयोजन पूरा करते देखा जाता है ।

नवरात्रि पर्व को अध्यात्म क्षेत्र में मुहूर्त के रूप में विशेष मान्यता प्राप्त है । आत्मिक प्रगति के लिए वैसे कभी भी किसी मुहूर्त्त की प्रतीक्षा नहीं की जाती । किन्तु नवरात्रियों में प्रारंभ किए गए प्रयास संकल्पबल के सहारे शीघ्र ही गति पाते व साधक का वर्चस् बढ़ाते चले जाते हैं । इस अवसर पर देव प्रकृति की आत्माएँ किसी अदृश्य प्रेरणा से प्रेरित होकर आत्मकल्याण व लोकमंगल के क्रियाकलापों में अनायास ही रस लेने लगती हैं , सूक्ष्म जगत के दिव्य प्रवाह इन नौ दिनों में तेजी से उभरते व मानवी चेतना को प्रभावित करते देखे जाते हैं । जीवधारियों में से अधिकांश को इन्हीं दिनों प्रजनन की उत्तेजना सताती है । आधे गर्भाधान आश्विन और चैत्र के दूसरे पक्षों में होते व शेष आधे पूरे वर्ष को मिला कर संपन्न होते हैं । इसमें प्राणी तो कठपुतली की तरह अपनी भूमिका निभाते हैं–सूत्र संचालन किसी अविज्ञात मर्म स्थल से होता है, जिसे सूक्ष्म या परोक्ष जगत नाम से अध्यात्म क्षेत्र में जाना जाता है । वस्तुतः नव रात्रियों में कुछ ऐसा वातावरण रहता है, जिसमें आत्मिक प्रगति के लिए प्रेरणा और अनुकूलता की सहज शुभेच्छा बनती देखी जाती है ।

ज्वार भाटे हर रोज नहीं, अमावस्या व पूर्णिमा को ही आते हैं । सूर्य के उदय व अस्त होते समय प्राणऊर्जा की बहुलता सूक्ष्म जगत में बनी रहती है ।

चिन्तन प्रवाह को अप्रत्याशित मोड़ देने वाली उमंगें नवरात्रि के नौ दिनों में विशेष रूप से उभरती देखी गयी हैं । इस अवधि में अन्तराल में अनायास ही ऐसी हलचलें उठती हैं, जिनका अनुसरण करने पर आत्मिक प्रगति की व्यवस्था बनने में ही नहीं, सफलता मिलने में भी ऐसा कुछ बन पड़ता है, मानो अदृश्य जगत से अप्रत्याशित अनुग्रह बरस रहा हो ।

नवरात्रि के नौ दिनों में शरीर व मस्तिष्क में विशिष्ट रसस्रावों की बहुलता के कारण उल्लास उमंगें जन्म लेती हैं । इनका सुनियोजन उपासना, जप, व्रत, अनुष्ठान जैसे साधनात्मक विधानों की ओर न करने पर परिणाम हानिकारक भी होता है । अपराधवृत्तियों का बाहुल्य इन्हीं दिनों देखा जाता है । देव संस्कृति में नवरात्रि पर्व के दौरान किये जाने वाले विभिन्न क्रिया कृत्यों का विधान अंतः की शक्ति को सुनियोजन देने के लिए ही है , उदाहरण के लिए गुजरात में दोनों नवरात्रियों में गरबा नृत्य संपन्न किया जाता है । भक्ति भावना की पराकाष्ठा व अंदर के उल्लास की क्रिया रूप में परिणति इस माध्यम से संपन्न होती है । महालय, दुर्गाष्टमी, पोंगल आदि पर्व ऐसी विशिष्टताओं से भरे हुए हैं । ये सभी उपक्रम उसी वेला में ही संपन्न होते हैं । तत्वदर्शी ऋषि–मनीषियों ने ऐसे ही तथ्यों को ध्यान में रखते हुए नवरात्रि में साधना का अधिक माहात्म्य बताया है और इस बात पर जोर दिया है कि अन्य अवसरों पर न बन पड़े तो इन नवरात्रियों में तो आध्यात्मिक तप साधनाओं का सुयोग बिठा ही लेना चाहिए ।

तम और सत दो ही गुण इस प्रकृति के हैं । 'तम ' अर्थात् जड़, 'सत्' अर्थात् चेतन । पर इन दोनों का जब मिलन होता है तो एक नई हलचल उठ खड़ी होती है, जिसे 'रज' कहते हैं । इच्छा, आकांक्षा, भोग, तृप्ति, हर्ष, प्रतिस्पर्धा आदि चित्त को व्यग्र कर विविध क्रियाकृत्यों में जुटाए रहने वाले प्रवाह 'रज' गुण की ही प्रतिक्रियाएँ हैं । साधना 'रज' के इन निविड़ बन्धनों से शरीर चेतना को मुक्त करने के लिए करनी होती है , मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के समुच्चय से बनी जड़ चेतन मिश्रित जीवचेतना हर घड़ी अशान्त बनी रहती है । इसी के परिमार्जन परिशोधन हेतु योगसाधना व तपश्चर्या की जाती है , जिसके लिए नवरात्रि की संधिवेला से श्रेष्ठ और कोई समय नहीं ।

जीव के परिमार्जन, उन्नयन एवं समस्त ऋद्धि–सिद्धियों, श्री–वैभव एवं कला के सोपानों को प्राप्त करने के लिए नवरात्रि में ही विभिन्न उपासनाएँ चलती हैं । रामभक्त उन दिनों रामायण का अखण्ड पाठ करते हैं व कृष्ण भक्त गीता का पारायण करते हैं । तंत्र विज्ञान के अधिकांश कौलकर्म इन्हीं दिनों संपन्न होते हैं । वाममार्गी साधक अभीष्ट मंत्र सिद्धि के लिए इसी अवसर की प्रतीक्षा करते हैं । तंत्र साधना में कुमारी पूजन, शव साधन तथा गायत्री की कुण्डलिनी जागरण, षटचक्र वेधन, आदि की साधनाएँ विशेष रूप से इन्हीं दिनों संपन्न की जाती हैं । देवी उपासकों द्वारा दुर्गा सप्तशती का पाठ इन्हीं दिनों विशिष्ट उद्देश्यों के लिए किया जाता है ।

यजुर्वेद में गायत्री महाशक्ति को एक विचित्र वृषभ के रूप में अलंकृत किया गया है

चत्वारिश्रृंगा त्रयो अस्य पारा ।
द्वेशीर्षे सप्त हस्ता सें ऽअस्य
त्रिधा बद्धौ वृषभौ रोकवीति.
महोदेवी मर्त्या आविवेश (१७/९१) अर्थात्

"चार सींग वाला, तीन पैर वाला, दो सिर वाला, सात हाथों वाला, तीन जगह बँधा हुआ यह गायत्री महामंत्र रूपी वृषभ जब दहाड़ता है तब महान देव बन जाता है और अपने सेवक का कल्याण करता है ।"

भाव यह कि चार वेद चार सींग हैं । आठ–आठ अक्षरों के तीन चरण अर्थात् तीन पैर । ज्ञान और विज्ञान दो सिर । सात विभूति देने वाली सात व्याहृतियाँ सात हाथ हैं । ज्ञान, कर्म, उपासना से तीन जगह बँधा हुआ यह महामंत्र रूपी बैल जब दहाड़ता है–उच्चारण करता है तो देवत्व भरी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और सान्निध्य में रहने वाला व्यक्ति सब कुछ पा लेता है ।

वस्तुतः नवरात्रि देव पर्व है । जो इस अवसर पर सतर्कता बरतते व प्रयत्नशील होते हैं, वे अन्यान्य अवसरों की अपेक्षा इस शुभमुहूर्त्त का लाभ भी अधिक उठाते हैं । भौतिक लाभों को सिद्धि नाम से व आत्मिक लाभों को ऋद्धि नाम से जाना जाता है । संकटों के निवारण, तथा प्रगति के अवसरों को जुटाने हेतु सिद्धियों की आवश्यकता पड़ती है । नवरात्रि सिद्धियों की अधिष्ठात्री कही जाती है । पर इस शुभ अवसर पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है–जीवनचर्या में देवत्व की विभूतियों का समावेश । यह सम्पदा जिसे जितनी मात्रा में मिलती है, वह उतना ही निहाल होता चला जाता है ।

युगसंधि की इस विषम वेला में नवरात्रि पर्व का विशेष महत्व है । वैसे तो इतना तक कहा गया है कि आगामी नौ वर्षों का एक-एक दिन नवरात्रि के एक-एक दिन के समान कहा गया है । हिमालय की सूक्ष्म शरीरधारी आत्माएँ इस अवधि में अपनी तप ऊर्जा से जन-जन को लाभान्वित करने जा रही हैं पर विशिष्टता इनमें भी नवरात्रि की अपनी जगह है । १९९१ की आश्विन नवरात्रियाँ ऐसी ही शुभवेला में आयी हैं ।

नवरात्रि में गायत्री महाशक्ति का अवलम्बन श्रेष्ठतम मार्ग बताया गया है । इस अवधि में किये गए गायत्री अनुष्ठान समर्थ अनुदानों को जन्म देते हैं । वस्तुतः नवरात्रि की साधना संकल्पित साधना है । "अनुष्ठान " शब्द का अर्थ है "अतिरिक्त आध्यात्मिक सामर्थ्य उत्पन्न करने के लिए संकल्पपूर्वक निर्धारित प्रतिबन्धों और तपश्चर्या के साथ विशिष्ट उपासना संपन्न करना ।" चौबीस हजार जप की संकल्पित गायत्री साधना ही नवरात्रि के लिए सर्वश्रेष्ठ है । लम्बे समय तक व्रत पालन करने, कड़ी पुरश्चरण साधनाएँ करने के लिए तो सुदृढ़ मनोबल चाहिए । संकल्प किसी बहाने टूटे या मात्र चिन्हपूजा ही हो इससे अच्छा तो यह है कि छोटा ही सही पर संकल्प नियमपूर्वक निभाया जाय । इस दृष्टि से नौ दिन की चौबीस हजार जप की साधना सुगम भी है व तप की न्यूनतम आवश्यकताओं को भी पूरा करती है । नियत दिनों में नियत जप संख्या, ब्रह्मचर्य व्रतपालन, भोजन में उपवास का समावेश, दूसरों से शरीर सेवा न करवाना, भूमिशयन, कम वस्त्रों में रहना , चमड़े का परित्याग जैसी तप तितिक्षाएँ, अंत में हवन की पूर्णाहुति ये अनुष्ठान की सामान्य मर्यादाएँ हैं ।

उपवास के नियम कड़ाई से पाले जायँ क्योंकि इस अवधि में नई चेतना का शरीर में संचार होता है अतः शरीरगत नाड़ी गुच्छक सतत् सक्रिय रहते हैं । आहार की अनियमितता से शरीरगत रसों में असंतुलन तथा मन की एकाग्रता में विक्षेप पैदा होता है । इस अवधि में फल, दूध, छाछ, सुपाच्य-बिना नमक के भोजन पर ही रहना चाहिए । गायत्री जप तुलसी या चन्दन की माला से संपन्न किया जाय । प्रतिदिन तीन घण्टे जप से (सूर्योदय से दो घण्टे पूर्व व सूर्यास्त से एक घण्टा पूर्व) चौबीस हजार जप की संख्या पूरी हो जाती है । जो दैनिक उपासना के अभ्यस्त नहीं हैं व कभी-कभी ही कुछ पूजा पाठ करते हैं उनसे भी जोर देकर कहा जाता है कि इन नौ विशिष्ट दिनों में कम से कम कुछ नियम निबाहें व निश्चित साधना करें । मंत्र लेखन, गायत्री चालीसा पाठ, पंचाक्षरी जप आदि की सरल व्यवस्थाएँ उनके लिए ही हैं । अच्छा हो, जहाँ व्यवस्था हो वहाँ सामूहिक उपासना का क्रम चले । इससे विशिष्ट ऊर्जा का उद्भव होता है ।

अनादि मंत्र-गुरु मंत्र गायत्री का जप अनुष्ठान ऋतुओं की संधिवेला में जब भी किया जाता है, विशेष रूप से युगसंधि की इस अवधि में तो वह विशिष्ट फलदायी होता है । त्रिपदा के रूप में इसकी तीन सिद्धियाँ अमृत-चिरयौवन, पारस-सत्साहस, कल्पवृक्ष, परिष्कृत चिन्तन, आप्तकाम होने का सौभाग्य अनुदान प्राप्त होते हैं । इस बार के नवरात्रि आयोजनों से सारे भारत में शक्तिसाधना का बीजारोपण करने वाले कार्यक्रमों का शुभारंभ हो रहा है । जहाँ भी व्यवस्था बन सके, वैयक्तिक व सामूहिक स्तर पर क्रमबद्ध अनुष्ठान की व्यवस्था की जाए ताकि परोक्ष जगत से बरसने वाले दैवी अनुदानों से सब लाभ उठा सकें । *

शतपथ ब्राह्मण में एक आख्यायिका आती है जिस में यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि एक पुरोहित गायत्री के मर्म से वंचित रहने के कारण साधारण उपासना करते रहने पर भी समुचित सत्परिणाम प्राप्त न कर सका ।

संस्कृत की ऋचा का भाव यह है कि राजा जनक का पूर्वजन्म का पुरोहित बुडिल अनुचित दान लेने के पाप से मरकर हाथी बन गया । किन्तु राजा जनक ने गायत्री का तप किया, जिसके फल स्वरूप वह राजा बने । राजा ने हाथी को उसे पूर्वजन्म का स्मरण कराते हुए कहा-"आप तो पूर्व जन्म में कहा करते थे कि मैं गायत्री का ज्ञाता हूँ । फिर अब हाथी बनकर क्यों बोझ ढोते हो ?" हाथी ने कहा "मैं पूर्वजन्म में गायत्री का मुख नहीं समझ पाया था, इसलिए मेरे पाप नष्ट न हो सके । जैसे मुखाग्नि डाले गए ईंधन को भस्म कर देती है, इसी तरह गायत्री का मुख जानने वाला आत्मा अग्नि मुख होकर पापों से छुटकारा पाकर अजर अमर बन जाता है ।" बाद में पुरोहित को मुक्ति मिल गयी ।

गायत्री की उच्च स्तरीय साधना–१

प्राणशक्ति एक जीवन्त ऊर्जा, महत्वपूर्ण उपलब्धि

मानवी चेतना को पाँच भागों में विभाजित किया गया है । इन्हें पंचकोश कहा जाता है । अन्नमय कोश का अर्थ है–इन्द्रिय चेतना । प्राणमय कोश से आशय है जीवनी शक्ति–जिजीविषा । मनोमय कोश अर्थात् विचार बुद्धि–प्रज्ञा । विज्ञानमय कोश अर्थात् आकांक्षा–संवेदना–भाव प्रवाह तथा अंतिम आनन्दमय कोश अर्थात् आत्मबोध– आत्मजागृति–जीवन्मुक्ति । गायत्री को पंचमुखी इन्हीं कोशों के साथ जोड़ते हुए निरूपित किया जाता है । इस अलंकारिक चित्रण में इतना ही संकेत है कि गायत्री की उच्चस्तरीय उपासना में पंचकोशों के जागरण–अनावरण की साधना का महत्वपूर्ण स्थान है । पाँचकोश वस्तुतः तिजोरी के भीतर पाँच तालों में बंद बहुमूल्य रत्न भण्डार के समान हैं ।

चेतना का एक विभाजन तीन शरीर तीन ग्रंथियों के रूप में भी है । त्रिपदा साधना में स्थूल–सूक्ष्म, कारण शरीर को विकसित करने की साधना की जाती है । स्थूल शरीर की साधना में यों अन्नमय व प्राणमयकोश दोनों ही आते हैं । सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत मनोमय कोश तथा विज्ञानमय कोश की साधना का पूर्वार्ध आता है तथा कारण शरीर के अन्तर्गत विज्ञानमय कोश का उत्तरार्ध एवं आनन्दमय कोश की अंतिम स्थिति आती है । यह दोनों विभाजन यों सूक्ष्म एनॉटामी की दृष्टि से पृथक्–पृथक् हैं अतः मोटे रूप में ही दोनों में कुछ साम्यता बिठाई जा सकती है । पाँचकोशों की साधना हो चाहे तीन शरीरों की, है यह गायत्री की उच्चस्तरीय साधना व इसके प्रतिफल बड़े महत्वपूर्ण हैं । अन्नमयकोश की सिद्धि से नीरोगता, दीर्घजीवन व चिरयौवन का लाभ मिलता है । प्राणमयकोश से साहस, शौर्य, पराक्रम, प्रभाव, प्रतिभा जैसी विशेषताएँ उभरती हैं । मनोमयकोश की जाग्रति से विवेकशीलता, दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता, धैर्य–संतुलन, तनाव मुक्ति जैसे गुण उपलब्ध होते हैं , अतीन्द्रिय ज्ञान, अपरोक्षानुभूति, दिव्यदृष्टि जैसी उपलब्धियाँ विज्ञानमयकोश के जागरण की हैं । आनन्दमयकोश के विकास से ईश्वर दर्शन, आत्म साक्षात्कार, स्वर्ग–मुक्ति, हर घड़ी आनन्द की स्थिति जैसी महान उपलब्धियाँ हस्तगत होती हैं । अन्नमयकोश का केन्द्र षटचक्रों से संगति बिठाते हुए स्वाधिष्ठान चक्र बताया गया है । प्राणमय कोश का मणिपूर, मनोमय कोश का आज्ञा चक्र, विज्ञानमय कोश का विशुद्धि तथा आनन्दमय कोश का केन्द्र सहस्रार चक्र है । पंचकोशों का जागरण–अनावरण के साथ ही चक्र वेधन होता व दिव्य सिद्धियाँ प्रकट होने लगती हैं । यही कुण्डलिनी साधना है ।

इन्द्रिय चेतना व जीवनी शक्ति का समन्वित रूप जो प्रारंभिक दो कोशों की परिधि अपने में समाहित किए हुए है–एक नाम से संबोधित किया जा सकता है–प्राणशक्ति । मनुष्य एक प्राणी है । प्राणी उसे कहते हैं, जिसमें प्राणों का स्पन्दन हो रहा हो । प्राण निकल जाने पर शरीर निर्जीव होकर सड़ गल जाता है, भौतिक अस्तित्व समाप्त हो जाता है । मनुष्य जीवित है एवं विविध क्रियाकलापों में संलग्न है, क्योंकि उसमें प्राण है । वस्तुतः इस प्राणशक्ति की न्यूनाधिकता ही व्यक्ति की सशक्तता, समर्थता एवं प्रतिभाशीलता का निर्धारण करती है । प्राण एक विद्युत है, जो जिस क्षेत्र में भी जिस स्तर पर संयुक्त होती है, संचित होती है, उसी में चमत्कार उत्पन्न कर देती है । गायत्री महामंत्र की साधना का प्रमुख लाभ प्राणशक्ति जीवनी शक्ति के रूप में ही साधक को मिलता है ।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है–"सा हैषा गयांस्तत्रै प्राणाः वै गयास्तत्प्राणांस्तत्रे । तद्यद् गयांस्तत्रे । तस्याद् गायत्री नाम ।" अर्थात् गय कहते हैं प्राण को । त्री अर्थात् त्राण–रक्षण करने वाली । जो प्राणों की रक्षा करे उस शक्ति का नाम गायत्री हुआ ।

याज्ञवल्क्य संहिता में कहा गया है–

"गायत्रं त्रायते इति वा गायत्री , प्रोच्यते तस्मात् गायन्तं त्रायते'यतः ।" अर्थात्-प्राणों का संरक्षण करने वाली होने से उसे गायत्री कहा जाता है ।

कितना सटीक नाम करण है–गायत्री । तीन अक्षरों से भावार्थ निकलता है जो प्राणशक्ति की रक्षा करे–उसका अभिवर्धन करे । शरीर में प्राण का बाहुल्य हो तो व्यक्ति नीरोग, दीर्घजीवी परिपुष्ट, समर्थ एवं प्रफुल्ल दिखाई देता है । मन में प्राण का बाहुल्य हो तो

मस्तिष्क की उर्वरता बढ़ जाती है । स्मरण शक्ति, सूझबूझ, निर्णय क्षमता, एकाग्रता जैसी विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं । अंतरंग में, अध्यात्म क्षेत्र में, यही प्राण शक्ति शौर्य, साहस, जीवट, संकल्प शक्ति, मनोबल की सामर्थ्य के रूप में दिखाई देती है ।

आज संसार में सब से बड़ा अभाव कोई है तो वह है प्राणशक्ति का , जीवट का । स्वास्थ्य की दृष्टि से आज अधिकांश व्यक्ति निस्तेज दिखाई देते हैं । थोड़ा सा दिनचर्या का व्यतिक्रम या मौसम का असंतुलन आज व्यक्ति को रुग्ण बना देता है । मनोबल भी अनिवार्य है रोग से जूझने के लिए, चाहे वह शारीरिक हो अथवा मानसिक । मनःशक्ति के कम होने का कारण है प्राण को संचित करने की क्षमता में ह्रास तथा इसका प्रतिफल है अनेकानेक मनोरोग, मनोशारीरिक रोग तथा शरीरगत जटिल व्याधियों के शिकार व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि । प्राणशक्ति के मूल्य पर व्यक्ति भौतिक समृद्धियाँ व जीवन व्यापार में सफलता पाता है । प्राण का उपार्जन मनुष्य का सर्वोपरि पुरुषार्थ है व जब यह संपन्न नहीं होता, व्यक्ति रुग्ण, तेजहीन व बलहीन होता, जीवन संग्राम में पराजित होता देखा जाता है ।

प्राणशक्ति का उपार्जन करने के कई भौतिक उपाय भी हैं और एक सीमा तक उन उपायों से प्राणशक्ति बढ़ाई भी जा सकती है । मूल महत्व उसे आध्यात्मिक विकास में प्रयुक्त करना है । तत्ववेत्ता-मनीषी उधर ही ध्यान देते रहे हैं । गायत्री महामंत्र वस्तुतः प्राण शक्ति उपलब्ध कराने के रूप में ही साधक को प्रमुख लाभ देता है । इस महामंत्र की उपासना यदि ठीक प्रकार से की जाय, तो उपासक में प्राणशक्ति की अभिवृद्धि शीघ्र ही होने लगती है और वह इस अभिवर्धन के आधार पर कई तरह की सफलताएँ प्राप्त करता है । कहने वाले इसे गायत्री माता का अनुग्रह आशीर्वाद कहा करें पर वस्तुतः होता यह है कि इस उपासना से साधक में प्राणशक्ति, आत्मबल विकसित होता चला जाता है । व्यक्तित्व में कई प्रकार के परिष्कार-परिवर्तन देखे जाते हैं , कठिनाइयों के अवरोध मार्ग से हटते हैं तथा सफलताओं का पथ प्रशस्त होता है । गायत्री की उपासना वस्तुतः प्राणशक्ति की ही उपासना है । जिसे जितना प्राण-बल उपलब्ध हो गया हो, समझना चाहिए कि उसकी उपासना उतने ही अंशों में सफल हो गयी है ।

सामर्थ्यवान गुरु अपने शिष्यों को इसी प्राण सम्पदा से सुसम्पन्न बनाकर उन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाते हैं । शिष्य की गायत्री साधना के बदले गुरु माध्यम बनकर आरुणि के लिए महर्षि धौम्य जाबालि के लिए गौतम, अर्जुन के लिए इन्द्र, नचिकेता के लिये यम तथा कच के लिए शुक्राचार्य रूप में एवं विवेकानंद के लिए रामकृष्ण परमहंस रूप लेकर प्राणशक्ति से शिष्यों को ओतप्रोत कर देते हैं ।

प्राणशक्ति का यथावत संतुलन बना रहे तो जीवसत्ता के सभी अंग प्रत्यंग ठीक काम करते हैं । शरीर स्वस्थ रहेगा तो मन प्रसन्न रहेगा और अन्तःकरण में सद्भाव सन्तोष झलकेगा । किन्तु यदि इस क्षेत्र में विसंगति-विकृति उत्पन्न होने लगे तो उसकी प्रतिक्रिया आधि-व्याधियों के रूप में, विपत्तियों विभीषिकाओं के रूप में सामने खड़ी दिखाई देगी । रक्तदूषित हो तो अनेकों प्रकार के चर्मरोग , फोड़े फुंसी दर्द-सूजन आदि विग्रह उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार प्राणतत्व में असंतुलन उत्पन्न होने पर शारीरिक अवयवों की क्रियाशीलता लड़खड़ाती है । कई प्रकार की व्यथा बीमारियाँ उपजती हैं । मनःक्षेत्र में उत्पन्न हुआ प्राण विग्रह-असंतुलनों, आवेगों और उन्मादों के रूप में

देवी भागवत में एक कथा आती है, जिसके अनुसार एक बार पंद्रह वर्षों की लम्बी अवधि का घोर दुर्भिक्ष पड़ा । अन्न, वनस्पति और जल के बिना अगणित प्राणी मर गए । सभी ऋषिगणों ने विचार किया कि गायत्री के परम उपासक तपोनिष्ठ महर्षि गौतम के पास चलना चाहिए । सबका कष्ट सुनकर गौतम ऋषि ने संकट निवारण हेतु गायत्री महाशक्ति से प्रार्थना की ।

माँ गायत्री ने प्रसन्न होकर महर्षि को एक अक्षय पात्र दिया व कहा कि इससे तुम्हारी अभीष्ट कामनाएँ पूर्ण हो जाया करेंगी । यह कहकर वेदमाता अन्तर्ध्यान हो गयीं और उस पात्र की कृपा से अन्न के पर्वतों जैसे ढेर लग गए । गौतम ऋषि ने आगन्तुकों के लिए वहाँ गायत्री का परम तीर्थ बना दिया , जहाँ रहकर वे सब गायत्री माता के पुरश्चरण भक्ति पूर्वक करने में संलग्न हो गए ।

अक्षयपात्र जिसका वर्णन कथा में आया है, और कुछ नहीं मानवी आंतरिक शक्तियों का विकास ही है ।

दृष्टिगोचर होता है । भावना क्षेत्र में विकृत हुई प्राणसत्ता मनुष्य को नरकीटक–नरपिशाचों के घिनौने गर्त में गिरा देती है । पतन के अनेकों आधार प्राणतत्व की विकृति से ही संबंधित होते हैं । गायत्री का अवलम्बन लेने पर पतन से उत्थान का जो पथ प्रशस्त होता है, वह इसी प्राणशक्ति के सुनियोजन के आधार पर संभव हो पाता है ।

प्राण एक शक्ति है और शक्ति उत्पन्न करने का एक विज्ञानसम्मत तरीका है- घर्षण (फ्रिक्शन)। भौतिक जगत में इस प्रयोग से शक्तिशाली उपलब्धियाँ प्राप्त की जाती हैं । आत्मिक जगत में प्राणशक्ति का उपार्जन करने के लिए भी यही प्रक्रिया प्रयुक्त होती है ।

जंगलों में लगने वाली आग–दावानल, बड़वानल जैसे नाम से संबोधित की जाती है । यह मनुष्यों के द्वारा नहीं लगती, वरन् सूखे पेड़ों की टहनियों के तेज हवा के कारण हिलने व परस्पर टकरा जाने से–रगड़ से उत्पन्न होती है । चकमक पत्थर के टुकड़ों को आपस में टकराकर चिनगारियाँ उत्पन्न करने की कला कभी आदिम मानव ने सीखी थी । बाद में फिर अग्नि उत्पादन के अन्य तरीके सामने आते गए । यज्ञ कार्यों में लकड़ियाँ रगड़ कर अरणि–मंथन की क्रिया द्वारा अग्नि उत्पन्न की जाती है । प्राणायाम की प्रक्रिया लगभग इसी प्रकार की होती है । प्राणायाम में श्वास–प्रश्वास प्रक्रिया को क्रमबद्ध–तालबद्ध, लयबद्ध बनाया जाता है । स्वास्थ्य संवर्धन के क्षेत्र में इस प्रक्रिया के फेफड़ों की कसरत बताया जाता है । किन्तु प्राणायाम का प्रयोजन तो इससे भी अति महत्वपूर्ण है । प्राणायाम द्वारा निखिल ब्रह्माण्ड में से प्राणतत्व की अभीष्ट मात्रा को आकर्षित कर उस उपलब्धि को अभीष्ट संस्थानों में पहुँचाया जाता है । साँस के साथ घुला प्राण जब रगड़ के साथ अंदर जाता व बाहर आता है तो उससे जो ऊर्जा पैदा होती है, वह व्यक्ति को वास्तविक शक्ति देती है । प्राणायाम में संकल्प शक्ति का समावेश करना पड़ता है । उसी के चुम्बकत्व से व्यापक प्राणतत्व को आकाश से खींच सकने में सफलता मिलती है । इस प्रकार श्वसन क्रिया के साथ–साथ प्रचण्ड मनोबल का समावेश करने पर ही प्राण विद्या का आध्यात्मिक प्रयोग सफलता तक पहुँचा पाना संभव हो पाता है ।

दही मंथन में 'रई' को रस्सी के दो छोरों से पकड़कर उल्टा सीधा घुमाया जाता है । रई घूमती है और उससे दूध में घुला–नवनीत–घी बाहर आ जाता है । बाएँ–दाएँ नासिका स्वरों से चलने वाले इड़ा–पिंगला विद्युत प्रवाहों का विभिन्न विधियों से मंथन करने पर दूध बिलोने जैसी हलचलें उत्पन्न होती हैं व उससे कायचेतना में भरा हुआ ओजस उभर कर आता है । इसको विधिवत् उत्पन्न किया और धारण किया जा सके तो साधक को मनस्वी, तेजस्वी और ओजस्वी बनने का अवसर मिलता है । यह उपलब्धि जीवन में साहस व प्रखरता के रूप में कार्यान्वित होती देखी जा सकती है ।

स्त्रियाँ वेदमंत्रों की द्रष्टा रही हैं । महर्षि अत्रि के वंश में उत्पन्न ब्रह्मवादिनी महाविदुषी विश्ववास ऋग्वेद के पाँचवे मण्डल के अट्ठाइसवें षटऋकों की मंत्र द्रष्टा हैं । तपस्या के बल पर वे ऋषि पद को प्राप्त हुईं । तपस्विनी अपाला पतिग्रह में असाध्य रोग से ग्रसित हो गयी थीं । उनने तप करके इन्द्र को प्रसन्न किया और खोया हुआ स्वास्थ्य तथा ब्रह्मज्ञान पाया । अपाला भी ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के ९१ वें सूत्र की १ से ७ तक की ऋचाओं की द्रष्टा हैं । तपती की तपस्या से प्रसन्न होकर स्वयं सूर्य नारायण ने उनसे विवाह किया था । अभण ऋषि की कन्या वाक् प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी हुई हैं । ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल में १२५ वें देवी सूत्र के आठ मंत्रों की ऋषि यह वाक् देवी ही है । ऋग्वेद के दसवें मण्डल के ८५ सूत्र की ऋचाओं की ऋषि होने का श्रेय ब्रह्मवादिनी सूर्या को प्राप्त है । अण्व ऋषि की धर्मपत्नी, ब्रह्मवादिनी रोमेशा ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १२६ वें सूक्त की ७ ऋचाओं की द्रष्टा ऋषि हुई हैं ।

जब उपरोक्त देवियाँ वेदमंत्रों की द्रष्टा हो सकती हैं, तो फिर उन्हें गायत्री मंत्र के लिए अनधिकारिणी घोषित करने का क्या औचित्य हो सकता है ? गायत्री मंत्र नर व नारी सब के लिए है । सब उसे जप सकते हैं ।

प्राणायाम कई प्रकार के हैं पर गायत्री साधकों के लिए प्राणाकर्षण प्राणायाम, नाड़ीशोधन तथा लोम–विलोम–सूर्यवेधन प्राणायाम–ये तीन सर्वश्रेष्ठ, सुगम एवं शक्तिदायी प्राणयोग उपचार हैं । गायत्री की सिद्धि को पाने के लिए हर साधक को इनका अवलम्बन लेना चाहिए ।

*

गायत्री की उच्चस्तरीय साधना–२

हमारे उच्चचेतन की विलक्षण क्षमताएँ

स्वामी विशुद्धानन्दजी, जिन्हें "गंध बाबा" नाम से भी जाना जाता रहा है गायत्री के सिद्ध उपासक एवं सूर्य विज्ञान के ज्ञाता के रूप में ख्याति प्राप्त संत हैं । वे कहते थे कि सृष्टि में जो भी जीवचेतना है, जो भी स्पन्दन है, उसके मूल में सविता देवता की शक्ति ही है । यदि उससे निस्सृत किरणों का उपयोग आध्यात्मिक प्रयोजनों के लिए किया जा सके तो व्यक्ति अगणित सिद्धियों का अधिकारी बन सकता है । उनका स्वयं का जीवन उपरोक्त कथन का प्रमाण है । एक बार प्रत्यक्ष अनुभव का प्रसंग उठने पर स्वामी जी ने माला में से प्रत्येक फूल में जिज्ञासु दर्शकों की इच्छा के अनुरूप विभिन्न फूलों की गंधों का समावेश कर दिखाया था । वे स्वयं सिद्धियों के प्रदर्शन के विरुद्ध थे किन्तु गायत्री व सविता की महत्ता समझाने के लिए यदा–कदा सुपात्रों को ऐसे विलक्षण घटनाक्रम दिखा दिया करते थे ।

स्वामी जी का अभिमत था कि जो कुछ भी दृश्य जगत में है, उसके परमाणु सूर्य की किरणों व परोक्ष ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं । गायत्री साधक यदि चाहे तो उनसे आहार ग्रहण कर सकता है, अपने लिए जो चाहे उस विराट महासागर में से ले सकता है । अनेकों बार स्वामी जी ने अविज्ञात के गर्भ से अनेक वस्तुएँ निकालकर अपने शिष्यों को सूँघने, खाने व देखने को दीं ताकि वे जन–जन को बता सकें कि गायत्री व सविता रूपी महाशक्ति की उपासना से व्यक्ति कितनी विलक्षण क्षमताओं का स्वामी बन जाता है ।

यहाँ यह प्रतिपादन किया जा रहा है कि गायत्री महाशक्ति की उच्चस्तरीय साधना से मनोमय एवं विज्ञानमयकोश की सिद्धि द्वारा विलक्षण प्रतिभा, अद्‌भुत संकल्प शक्ति से लेकर पूर्वाभास, दूरदर्शन, परोक्ष जगत की जानकारी से लेकर पदार्थ हस्तान्तरण तक की उच्चचेतन स्तर की क्षमताएँ अर्जित की जा सकती हैं । ये सब विभूतियाँ मात्र पौराणिक मिथक नहीं हैं, इस सदी में भी अगणित ऐसे साधक हमारे देश व बाहर हुए हैं , जिनने साधना द्वारा सिद्धि की यह सामर्थ्य हस्तगत की है । दृश्य रूप में हम इन दोनों कोशों की उपलब्धियों को जानना चाहें तो मनोमयकोश से मस्तिष्कीय विकास, उत्कृष्ट चिन्तन–प्रतिभा परिष्कार चमत्कारी प्रज्ञा रूप में इन्हें समझ सकते हैं , दूसरी ओर विज्ञानमय कोश को असामान्य स्तर की बुद्धि के विकास, परोक्ष से सम्पर्क जोड़ने की क्षमता तथा आदर्शवादी उमंगों के उभार के रूप में जान सकते हैं ।

मनोमयकोश की साधना में एकाग्रता की शक्ति का सम्पादन एवं अभिवर्धन किया जाता है । मनःशक्ति बिखरी होने पर मस्तिष्क के पूर्ण समर्थ होते हुए भी व्यक्ति को पिछड़ेपन से ही ग्रस्त तथा बौद्धिक दृष्टि से दुर्बल बनाती है । इस बिखराव को गायत्री की ध्यानयोग प्रक्रिया द्वारा मनःसंस्थान के विभिन्न क्षमता केन्द्रों पर संचित-केन्द्रित कर लिया जाता है तो प्रसुप्त पड़े संस्थान जाग्रत होने लगते हैं । वे विशेषताएँ जो भीतर पहले नहीं थीं , जाग्रत होने लगती हैं । स्मरण शक्ति–प्रतिभा–बुद्धिलब्धि जैसी कितनी ही क्षमताएँ इस आधार पर विकसित की जा सकती हैं ।

आतिशी शीशे के माध्यम से कुछ ही सीमित क्षेत्र में फैली सूर्य किरणों को जब एक ही बिन्दु पर एकत्रित किया जाता है, तो उतने भर से अग्नि प्रज्वलित हो जाती है । चूल्हे पर पानी गरम करते समय ढेरों भाप उड़ती रहती है पर यदि १०० ग्राम पानी की भाप प्रेशर कुकर में ठीक ढंग से प्रयुक्त की जाय तो उतने भर से कई आदमियों का भोजन तुरन्त पकाया जा सकता है ।भाप को निकलने का मार्ग न मिले व कुकर या कोई बड़ा बर्तन फट जाय तो यही भाप विनाश लीला भी मचा सकती है । सेरों बारूद जमीन पर फैलाकर जलादी जाय तो थोड़ी रोशनी व लपट की चमक भर दीखेगी किन्तु यदि उसे बंदूक की गोली या तोप के गोले के रूप में चलाया जाय तो वह बड़े से बड़ा क्षेत्र चीरती हुई गन्तव्य तक जा पहुँचती व नुकसान पहुँचाती है । नदी का पानी बहता रहता है, किन्तु जब उसी को संचितकर ऊपर से जलधार को टर्बाइन्स पर गिराया जाता है तो विद्युत प्रचुर परिमाण में उत्पन्न होने लगती है । ये सारे उदाहरण बिखराव को रोकने व केन्द्रीकरण की दिशा में मोड़ने से उत्पन्न चमत्कार के हैं ।

व्यक्ति की सामान्यतः सारी जीवन सम्पदा बिखरी सी रहती है । पेट व प्रजनन तक सीमित व्यक्ति अपना समय किसी तरह काटते व समय, अर्थ, विचार व इन्द्रिय सम्पदा का मनमाना उपभोग करते देखे जाते हैं । किन्तु जब इसी सम्पदा का दुरुपयोग रोककर सारे बिखराव का एकीकरण कर लिया जाता है तो उसी सामान्य व्यक्ति में से असामान्य महापुरुष उपज पड़ता है जो ऋद्धि-सिद्धियों का धनी देखा जाता है । प्रवीणता, पारंगतता, सफलता जैसी अनेकों उत्साहवर्धक विभूतियाँ वस्तुतः एकाग्रता की, मनोमय कोश की साधना की उपलब्धियाँ हैं । वैज्ञानिक कहते हैं कि मस्तिष्कीय कोशों को सतत् उत्तेजना देकर प्रसुप्त केन्द्रों को उद्दीप्त किया जा सकता है । गायत्री महाविद्या के जप द्वारा मूलतः यही प्रक्रिया संपन्न होती है व व्यक्ति विलक्षण मानसिक क्षमताओं से संपन्न बन जाता है । विकसित कला-कौशल, बढ़ी हुई स्मरण शक्ति, आविष्कर्ता स्तर की सूझबूझ, मौलिक स्तर का चिन्तन करने जैसी बुद्धि इसी प्रकार की सिद्धियाँ हैं । इससे न केवल व्यक्ति की स्वयं की क्षमताएँ परिष्कृत होती हैं, वह दूसरों को प्रभावित कर सकने की प्रतिभा का भी धनी बन जाता है ।

गायत्री साधक में साहसिकता-संकल्प शक्ति का अभिवर्धन भी मनोमय कोश की जाग्रति की उपलब्धियाँ हैं । प्रगति पथ पर अग्रगामी होने के लिए प्रतिकूलताओं से लड़कर साधन सामग्री जुटाने व अभावों का निवारण करने के लिए मानवी संकल्प शक्ति ही प्रमुख भूमिका निभाती है । संकल्प शक्ति चमत्कारी उपलब्धियों की जननी है । संकल्प शक्ति प्रचण्ड हो तो व्यक्ति एकाकी ही दुस्साहस करता हुआ बढ़ता चला जाता है व भौतिक-आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में प्रगति के शिखर पर पहुँच कर दिखा देता है । मनः संस्थान वस्तुतः ज्ञान, अनुभव , कौशल, प्रतिभा के साथ-साथ संकल्प शक्ति का भी केन्द्र है व इसे साध लेने पर सिद्धिदात्री महत्वपूर्ण उपलब्धियों का साधक अधिकारी बन जाता है । पानी वाले बाबा से लेकर "डाउसिंग" प्रक्रिया में निष्णात् भूगर्भ से लेकर कहीं भी विद्यमान वस्तु को दिव्य दृष्टि से देख लेने वाले व्यक्तियों जैसी क्षमता इस कोश की आज्ञाचक्र की सिद्धि की ही परिणति है । इससे व्यक्ति व्यावहारिक जीवन में काम आने वाली दूरदर्शिता से लेकर सूक्ष्म जगत में हो रही हलचलों को समझ सकने में भी निष्णात् हो जाता है । ध्यानयोग प्रक्रिया के अंतर्गत आज्ञाचक्र को जगाकर मनोमय कोश की साधना को सिद्धि स्तर तक पहुँचाया जाता है ।

विज्ञानमय कोश की साधना इससे ऊँचे स्तर की है । यह विचार क्षेत्र से गहरे स्तर पर भाव-प्रवाह से संबंधित है । इस कोश का केन्द्र विशुद्धिचक्र माना गया है । कहीं-कहीं अनाहत चक्र को भी इसका केन्द्र बताया गया है । इस कोश की संतुलित साधना मनुष्य को उदार, सज्जन, सहृदय, संयमी एवं शालीन बनाती है । परमार्थ भावना का "आत्मवत् सर्वभुतेषु" की भावना का विकास इस कोश की सिद्धि द्वारा होता है । यह कोश आत्मचेतना का वह गहन अन्तराल है, जिसका सीधा संबंध ब्राह्मीचेतना के साथ बनता है । विज्ञान शब्द का अर्थ है-"विशेषज्ञान" । मात्र "साइंस" नाम से यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए । यहाँ विज्ञानमय कोश में अर्थ जो समझा जाता है वह असामान्य बुद्धि-ऋतम्भरा प्रज्ञा के विकास रूप में समझा जाता है । उच्चस्तरीय विभूतियों को अपने अंदर छिपाए हुए पाँचकोशों की एक महत्वपूर्ण परत है यह । विज्ञानमय कोश दो प्रयोजन पूरे करता है । पहला-अंतः करण की, चित्त तथा अहंकार परतों का अनावरण, उन्नयन व परिष्कार तथा जीवन को कल्पवृक्ष स्तर का बनाने की

गायत्री मंजरी में महादेव शिव और जगन्माता पार्वती के वार्तालाप संबंधी बड़ा प्रेरणादायी प्रसंग आया है ।

एक बार कैलाश पर्वत पर विराजमान भगवान शिव से पार्वती ने पूछा "हे योगेश्वर आपने किस साधना से इतनी सिद्धियाँ प्राप्त की हैं । सभी आपकी सर्वज्ञता को तथा महेश्वर कहकर आपकी प्रभुता को स्वीकार करते हैं । इन विशिष्टताओं की उपलब्धि किस योग साधना द्वारा हुई है, कृपया बताएँ ?"

उत्तर में महादेवजी कहते हैं "गायत्री वेदमाता हैं । वही आद्यशक्ति कही जाती हैं । विश्व की वही जननी हैं । मैं उन्हीं गायत्री की उपासना करता हूँ । समस्त यौगिक साधनाओं का आधार गायत्री ही को माना गया है ? हर प्रकार की सफलता या सिद्धि गायत्री साधना से हस्तगत की जा सकती है । हे परम पतिव्रता पार्वती ! इस गुप्त रहस्य को जो जानेंगे और गायत्री साधना में प्रवृत्त होंगे, वे परम सिद्धि को प्राप्त करेंगे ।"

प्रक्रिया संपन्न करना । दूसरा –अंतःचेतना की गहरी परतों को जो अतीन्द्रिय क्षमता का भाण्डागार है, जगाना । आत्मसत्ता का असीम से संबंध जोड़ना ।

वस्तुतः हमारी उच्चस्तरीय चेतन मस्तिष्कीय परतों में सूक्ष्म जगत के साथ सम्पर्क जोड़ने की विलक्षण क्षमता विद्यमान है । सामान्यतया यह क्षेत्र कुम्भकर्ण जैसी गहन निद्रा में पड़ा रहता है । यदि उसे जाग्रत होने का अवसर मिले तो व्यक्ति को देवोपम बनाने से लेकर चमत्कारी सिद्ध पुरुषों जैसा बनाने की सामर्थ्य उसमें है । विज्ञानमय कोश की जागरण साधना इसी दिव्यचेतन को समुन्नत बनाने की प्रक्रिया का नाम है ।

प्राचीन भारतीय मनीषी–ऋषि–मुनि मानव मन के हर स्तर की सूक्ष्मतम जानकारी रखते थे । मन की इन शक्तियों को अभिव्यक्ति स्तर की सिद्धि प्रदान करने व अधिकार बनाए रखने की कला ही योग है ।योग-वसिष्ठ में मन को आकाश के समान सर्वत्र स्थित कहा गया है व बताया गया है कि यदि इसकी उच्चस्तरीय सिद्धि हस्तगत हो जाय तो व्यक्ति अनन्त सामर्थ्य का धनी बन जाता है । फिर अतीत का आगत का ज्ञान, सर्वभूत–सतज्ञान, परचित्त ज्ञान, पूर्वजन्मों का ज्ञान, भुवन ज्ञान,कायव्यूहज्ञान ताराव्यूह ज्ञान, तारागति ज्ञान, दूरश्रवण, दूरबोध, सर्वज्ञत्व आदि अलौकिक शक्तियाँ मानव को मिल जाती हैं । योगीराज अरविन्द, रामकृष्ण परमहंस, रमण महर्षि से लेकर अनेकानेक गंगा, नर्मदा व गोदावरी तट पर साधना करने वाले महापुरुषों ने गायत्री महाशक्ति के इस चौथे कोश विज्ञानमय कोश का ही अनावरण कर वह सिद्धि अर्जित की जिसका छोटा सा नमूना भक्तों द्वारा समय–समय पर देखा गया । परोक्ष की जानकारी, विचार संचार व देवात्म सम्पर्क आदि कितनी ही अलौकिक ऋद्धियाँ इसी केन्द्र की जाग्रति का परिणाम हैं । विशुद्धि या अनाहत चक्र पर ध्यान करते हुए देवात्म शक्ति के प्रवेश व सारे क्षेत्र के अग्निमय–ज्योतिर्मय होने की भावना ध्यानयोग की उच्चस्तरीय प्रक्रिया द्वारा विज्ञानमय कोश की साधना में संपन्न की जाती है । नादयोग से लेकर लययोग तथा त्राटक तक किसी को भी साधना का माध्यम बनाया जा सकता है । अंतिम लक्ष्य सब का एक ही है जीवन ब्रह्म सम्मिलन की रसानुभूति, अद्वैत का भाव तथा अंतर्चेतना का जागरण–उन्नयन ।

मनोमय कोश व विज्ञानमय कोश के जागरण–उन्नयन की साधना का मार्ग हर गायत्री साधक के लिए हर समय खुला हुआ है । यदि किसी को अलौकिक–परोक्ष स्तर की सिद्धि की कामना न हो तो भी व्यक्तित्व के सर्वांगपूर्ण परिष्कार से लेकर मनोकामना सिद्धि तथा प्रतिभा संवर्धन से लेकर प्रभाव क्षेत्र में वृद्धि जैसे अगणित ऐसे लाभ इससे जुड़े हुए हैं जो मानव मात्र को अभीष्ट हैं । यदि चक्रों को जगाकर सूक्ष्म शरीर की गहन परतों में स्थित इन कोशों को अनावृत्त किया जा सके तो व्यक्ति असाधारण श्रेय का अधिकारी बन सकता है । आध्यात्मिक लाभ जो सद्गुणों की बढ़ोत्तरी के रूप में मिलते हैं, वे तो स्वतः मिलने ही हैं ।

*

गायत्री उपासना के लाभ असंदिग्ध हैं किन्तु कई बार वांछित परिणाम में देरी होती है । वस्तुतः साधना का एक अंश पूर्वजन्मों के पाप निवारण में लग जाने से ही यह विलम्ब होता है , अतः किसी को अधीर नहीं होना चाहिए ।

आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ "माधवनिदान" के रचयिता माधवाचार्य ने तेरह वर्ष तक वृन्दावन में कठोर गायत्री साधना की । सफलता न मिलने पर वे काशी के मणिकर्णिका घाट चले गए व वहाँ श्मशान में रहकर साधना करने लगे । एक दिन भैरव उनकी सफल साधना से प्रसन्न होकर वर देने आए व बोले कि गायत्री उपासना के कारण उनमें इतना ब्रह्मतेज उत्पन्न हो गया है कि उसकी प्रखरता को न सहन पाने के कारण वे स्वयं सामने नहीं आ सकते । उनकी शंका का समाधान करने के लिए भैरव ने उन्हें पूर्व के चौदह जन्मों के एक से एक भयंकर दृश्य दिखाए व कहा कि "आपकी तेरह वर्ष की साधना पिछले १३ जन्मों के पापों का शमन करने में लग गयी । दुष्कर्मों से उत्पन्न कुसंस्कार मिटने पर अब आप जो गायत्री साधना करेंगे वह फलदायी होगी । " प्रसन्न मन लौटे माधवाचार्य ने वृन्दावन में जो उपासना की उसका आश्चर्यजनक प्रतिफल उन्हें मिला ।

गायत्री को इसीलिए पापनाशक कहा गया है ।

गायत्री की उच्चस्तरीय साधना –३

उल्लास की रसानुभूति एवं शक्ति की सिद्धि

पाँचकोशों में पाँचवाँ व अन्तिम तथा सर्वोपरि सिद्धियों का अधिष्ठाता आनन्दमय कोश है । यही कारण शरीर का केन्द्र भी है तथा इसकी संगति सहस्रारों में सहस्रार–ब्रह्मरंध्र से सटीक बैठती है । इस कोश के जाग्रत होने पर जीव भवबंधनों से मुक्त हो जाता है । जीव इस केन्द्र की जाग्रति की स्थिति में अपने को ईश्वर का अविनाशी अंश, सत्यं–शिवं–सुन्दरं की साकार सत्ता मानने लगता है । आत्मज्ञान का यह सर्वोच्च सोपान है । हर घड़ी, हर स्थिति में व्यक्ति अपने को प्रफुल्लित, उल्लसित पाता है । उसकी संवेदनाएँ भक्तियोग, विचारणाएँ ज्ञानयोग तथा क्रियाएँ कर्मयोग जैसी उच्चस्तरीय बन जाती हैं । गायत्री साधना में शिव–शक्ति का संगम जिसे कुण्डलिनी जागरण की चरमतम स्थिति माना जाता है, यहीं पर होता है । यह भक्ति और शक्ति की समन्वित साधना संपन्न करने वाला चेतना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आयाम है ।

हमारा स्थूल शरीर अपनी तत्परता के कर्मनिष्ठा के सहारे–विभूतियों का सुनियोजन कर अपने मनोरथ पूरे कराने में कल्पवृक्ष का काम करता है । समर्थता, बलिष्ठता के सहारे व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से वैभव–कीर्ति जो चाहे अर्जित कर सकता है । सूक्ष्म शरीर को कामधेनु कहा गया है । हमारी विचारणा, आकांक्षा, आस्था यदि उत्कृष्टता का अवलंबन पकड़े रहे तो हम हर पल स्वर्ग संवेदनाओं का रसास्वादन कर अपना संसार स्वयं बना सकते हैं । मस्तिष्क अपना इच्छित कल्पना लोक इतना सुन्दर गढ़ सकता है कि उसे वास्तविक जगत से किसी भी प्रकार कम प्रेरणा–प्रद नहीं कहा जा सकता । कारण शरीर की भाव अभिव्यंजना का तो अन्त ही नहीं है । करुणा– आत्मीयता जैसी दिव्य संवेदनाएँ सदा उमगती रहें तो फिर मनुष्य अपने इसी आत्मानुदान की प्रतिक्रिया से हर घड़ी भाव–विभोर स्थिति में रह सकता है । आत्मबोध–आत्म जाग्रति की स्थिति वस्तुतः है ही इतनी उच्चस्तरीय । इस दृष्टिकोण को ही अमृत कहा गया है ।

आनन्दमय कोश की साधना व्यक्ति की अनादिकालीन आकांक्षा तृप्ति, तुष्टि, शांति–उद्विग्नता से मुक्ति जैसे अनुदान सुलभ कराती है । वस्तुतः परमात्मा आनन्द स्वरूप है । जीवसत्ता के कण–कण में आनन्द भरा पड़ा है । आनन्दमय कोश के माध्यम से असीम मात्रा में, सहज रूप से प्रसन्नता–प्रफुल्लता का भाण्डागार मनुष्य को मिला हुआ है यह एक विडम्बना ही है कि आनन्द अंदर भरा पड़ा है व व्यक्ति स्वयं निरानन्द स्थिति में, तेजाब के तालाब में रोती कलपती स्थिति में बिलबिला–बेचैन पड़ा हुआ है । कोई व्यक्ति अपने घर का ताला कहीं बन्द करके चला जाय । लौटने पर ताली गुम हो जाने से बाहर बैठा ठण्ड में कष्ट पाए, ठीक ऐसी ही स्थिति आज के मानव की है । आनन्दमय कोश की साधना इसी दुखद दुर्भाग्य को मिटाने के लिए की जाती है । इसके आधार पर उस ताले को खोला जा सकता है, जिसमें उल्लास का अजस्र भाण्डागार भरा पड़ा है ।

पंचकोशी गायत्री उपासना की सर्वोच्च स्थिति में श्रेष्ठ संवेदनाएँ आत्मीयता, करुणा, उदारता, सेवा सद्भावना के रूप में आगे बढ़कर व्यावहारिक जगत में विकसित होती हैं । इस स्थिति में निरन्तर ईश्वर दर्शन की अनुभूति होती है । भगवान सूक्ष्म हैं । उनका साक्षात्कार सदैव भावानुभूति के रूप में होता है । ईश्वर दर्शन सदैव अन्तःकरण में दिव्यता की झाँकी के रूप में होता है । इसके लिए श्रद्धा और भक्ति के दो पैरों के सहारे लम्बी यात्रा पूरी करनी होती है । ईश्वर मिलन के रूप में जिस अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती है, उसके संबंध में उपनिषदकार कहता है–

एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति ।
–बृहदारण्यक (२/३/३२)

अर्थात् "इस आनन्द के प्राप्त होने की आशा से ही समस्त प्राणी जीवित रहते हैं ।

केनोपनिषद में ऋषि कहते हैं –"रसौवैसः । रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति ।" अर्थात्–"भगवान रसमय या रस स्वरूप हैं । उसी रस को पाकर मनुष्य आनन्द का अनुभव करता है ।"

परमेश्वर को रस कहा गया है । यह रस भौतिक नहीं, आत्मिक है । उसे उल्लास, सन्तोष, तृप्ति, शांति जैसी दिव्य संवेदनाओं में अनुभव किया जाता है । इसकी उपलब्धि आंतरिक उत्कृष्टता के साथ जुड़ी हुई है । अन्तरात्मा जितना पवित्र व उदात्त बनता जाता है, उसी अनुपात से यह आनन्द बढ़ता जाता है । आनन्द के आकांक्षी हर व्यक्ति को आनन्दमय कोश की गहराई में उतर कर उस उद्गम स्रोत तक पहुँचना पड़ता है, जहाँ से दिव्य आनन्द की प्रकाश किरणें फूटती हैं ।

आनन्दमय कोश की तीन महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं- *समाधि* स्वर्ग, और मुक्ति । चिन्तन की दिशाधारा का निर्धारण होकर आकांक्षाओं और विचारणाओं का उत्कृष्टता की दिशा में बहने लगना ही समाधि है । समाधि मूर्च्छित हो जाने को नहीं कहते । विषय भोगों की चंचलता समाप्त होने पर जब स्थिर मनःस्थिति प्राप्त करली जाती है व आत्मबल उपार्जित किया जाता है, उस स्थिति को ही समाधि कहते हैं । इस समाधि की फलश्रुति है अन्तर्दृष्टि (इन्ट्यूशन) का प्रकाश उदित होना तथा विलक्षण आनन्द की अनुभूति होना । *स्वर्ग* से आशय है –परिष्कृत दृष्टिकोण का विकास । इमर्सन कहते थे "मुझे नरक भेज दो, मैं वहाँ भी अपने लिए स्वर्ग बना लूँगा "। इस कथन में परिपूर्ण तथ्य है । परिष्कृत चिन्तन वालों को सत्यं, शिवं, सुन्दरम का दर्शन हर घड़ी होता है और सर्वत्र स्वर्ग की उपस्थिति प्रतीत होती है । स्वर्ग इसी दिव्य दर्शन का उत्कृष्ट चिन्तन का नाम है । तीसरा अनुदान है *मोक्ष*–कुसंस्कारों से, कषाय कल्मषों से मुक्ति । बंधन मुक्ति । मोक्ष का अर्थ है आत्मसत्ता को भौतिक न मानकर विशुद्ध चेतन स्वरूप में अनुभव करने लगना । प्रसन्नता–सुखानुभूति आंतरिक परिष्कार के आधार पर उपलब्ध होने के तथ्य पर विश्वास करना । मछली की तरह प्रचलनों की धार को चीरते हुए उल्टे प्रवाह में तिर सकने की क्षमता रखना । मोक्ष जीवन का परम फल बताया गया है । उसका सही रूप यही है ।

आनन्दमय कोश रूपी अमृत कलश का केन्द्र सहस्रार चक्र माना गया है, जो ब्रह्मरंध्र में स्थिति है । मनःसंस्थान के केन्द्र विन्दु विद्युतीय भाण्डागार, जो "रेटीकुलर एक्टीवेटिंग सिस्टम" के रूप में विद्यमान है, को अध्यात्म की भाषा में सहस्रारचक्र या सहस्रदल कमल कहा गया है । योग विद्या के अन्तर्गत ध्यानधारणा द्वारा इस प्रवाह को अभीष्ट दिशा में मोड़कर सुधारा व अभ्यस्त किया जाता है । इस ब्रह्मरंध्र की संरचना को देखते हुए उसे सहस्रदल कमल की आकृति से मिलता जुलता निरूपित किया जाता है ।

देव सम्प्रदायों ने इस केन्द्र का चित्रण अपने–अपने ढंग से किया है । विष्णु उपासकों की ब्रह्म लोक व्याख्या में विशाल क्षीर सागर में सहस्र फन वाले शेषनाग की शैया पर भगवान विष्णु की शयन स्थिति का वर्णन है । क्षीरसागर ग्रेमैटर है । सहस्रार कमल रेटीकुलर एक्टीवेटिंग सिस्टम है । उस पर अवस्थित ब्रह्मचेतना (कार्टीकल न्यूकलाई) भगवान विष्णु स्वयं हैं ।

गायत्री उपासना के संबंध में गीता में भगवान कहते हैं कि यह मार्ग किसी भी स्थिति में नुकसान पहुँचाने वाला नहीं है ।

योगीराज कृष्ण कहते हैं–

नेहाभिक्रम नाशोस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ।।

अर्थात्– इस मार्ग पर कदम बढ़ाने वाले का पथ अवरुद्ध नहीं होता । उलटा परिणाम भी नहीं निकलता थोड़ा सा प्रयत्न करने पर भी भय से त्राण मिलता है ।

साधारणतया यह सारा क्षेत्र प्रसुप्त स्थिति में निष्क्रिय पड़ा रहता है । स्वयं वैज्ञानिक कहते हैं कि ८३ से ८७ प्रतिशत मस्तिष्कीय भाग अभी तक खोजा नहीं जा सका व प्रसुप्त है । इसीलिए भगवान विष्णु सोये हुए दर्शाए गए हैं । शिवभक्तों ने इसी ब्रह्मरंध्र को शिवलोक कहा है । ग्रेमैटर मानसरोवर, सहस्रार, कैलाश, प्रकाश ज्योति शिव तथा शिव के मस्तिष्क से गंगा का उद्गम–ब्रह्मज्ञान का अवतरण । यह अलंकारिक चित्रण वस्तुतः एनॉटामी की दृष्टि से भी सही है । शक्ति उपासक इसी विवरण को कमलासन पर बैठी गायत्री या दुर्गा के रूप में बताते व साधना की महिमा प्रतिपादित करते हैं ।

आनन्दमयकोश के केन्द्र सहस्रार चक्र को अमृतकलश

भी कहते हैं । यह कलश जाग्रति की स्थिति में स्वयं को आनन्दित रखने वाले और दूसरों में पुलकन उत्पन्न करने वाले प्रवाह का उत्पत्ति केन्द्र है । दया, करुणा, ममता, उदारता, सेवा–सदभाव आदि सुकुमार संवेदनाएँ इसी केन्द्र से उठती, उमगती व पनपती हैं । इस सरसता को अध्यात्म शास्त्रों में "सोमरस" के नाम से पुकारा गया है । देवताओं का अमृतपान यही है । इसी का रसास्वादन ब्रह्मानन्द कहलाता है । इसी विशेषता के कारण परमात्मा को "सच्चिदानन्द" कहा जाता है ।

सहस्रारचक्र की साधना के लिए दो मार्ग गायत्री साधना में बताए जाते हैं एक ब्रह्मरंध्र में प्रकाश ज्योति का ध्यान, दूसरा खेचरी मुद्रा द्वारा तालुदेश से जिव्हा मूल को लगाकर इस अमृतरस का पान करना । ब्रह्मरंध्र में प्रकाश ज्योति का ध्यान कमल पुष्प के दीपक में जलने वाली प्रकाश ज्योति के रूप में किया जाता है । इस ब्राह्मी स्थिति की प्रतीक प्रतिमा अखण्ड ज्योति के रूप में मानी जाती है । निरन्तर जलने वाला घृतदीप इस ब्रह्मरंध्र का ब्रह्मलोक का प्रतीक प्रतिनिधि मानकर पूजा–उपचार में प्रतिष्ठित किया जाता है । जिव्हा को उलटकर कपालकुह्वर में प्रविष्ट कराने और भूमध्य में दृष्टि स्थिर रखने से खेचरी मुद्रा सिद्ध होती है जिसे यह हो जाती है, वह रोग, मृत्यु निद्रा भूख–प्यास व मूर्च्छना से मुक्त हो जाता है । योग रसायन में कहा गया है–

खेचरी योगं तो योगी शिरश्चंद्रादु पागतम् ।
रसं दिव्यं पिवेन्नित्वं सर्व व्याधि विनाशनम्"।।

अर्थात्–खेचरी साधना में योगी शिरश्चंद्र से झरने वाले उस दिव्य रस को पीता है, जो सर्वव्याधियों का नाश करने वाला है ।

आनन्दमय कोश की साधना गायत्री महाशक्ति की उच्चस्तरीय साधनाक्रम में श्रेष्ठतम साधना मानी गयी है । ईश्वर मिलन की, शिव और शक्ति के मिलन की कुण्डलिनी जागरण की साधना इसे कहते हैं । भावनात्मक क्षेत्र में इस दिव्य मिलन की प्रतिक्रिया आनन्द और उल्लास के रूप में दृष्टिगोचर होती है । यह भक्ति की पराकाष्ठा वाला स्वरूप है । संसार के श्रेष्ठ देवपक्ष को देखते हुए प्रसन्न होना आनन्द है और निकृष्ट दैत्यपक्ष को निरस्त करने के लिए उमगते शौर्य साहस को दिखाना उल्लास है । भक्ति से हटकर कुण्डलिनी जागरण वाला रूप शक्ति पक्ष है जो समृद्धि व सामर्थ्य का भण्डार है । आनन्दमय कोश की साधना वस्तुतः गायत्री साधक को वह सब देने में समर्थ है, जिसके लिए व्यक्ति भौतिक अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र में आकांक्षा रखता है । भक्ति व शक्ति दोनों का ही इसमें समन्वय है ।

सिद्ध महात्मा मुकुटराम जी महाराज की गुजरात में बड़ी ख्याति है व उनका ग्रन्थ मुकुटलीलामृत गायत्री साधना में रुचि लेने वाले पढ़ते हैं । मुकुटराम का जन्म बड़ौदा में एक ब्राह्मण घर में हुआ , उन दिनों गायत्री के संबंध में शाप लगने की भ्रान्ति सर्वत्र संव्याप्त थी । उनके पिता–माता संबंधी अन्य देवी देवताओं की उपासना करने पर उन्हें गायत्री मंत्र के लिए निषिद्ध कर देते थे ।

मुकुटराम ने बाल्यकाल से ही कहना शुरू कर दिया था कि "पिछले जन्म में मेरा एक महापुरश्चरण अधूरा छूट गया था । उसी की पूर्ति के लिए व गायत्री संबंधी भ्रान्ति मिटाने के लिए मैंने यह जन्म लिया है ।" बाल्यकाल की बातें तो उपेक्षित रहीं पर उनका जप अनुष्ठान क्रम यथावत चलता रहा व किसी गुरु से दीक्षा न लेने पर भी, किसी स्कूल में न जाने पर भी वे अलौकिक सिद्धियों के अधिकारी बन गए । जीवन भर उनने जनसाधारण को कलियुग की संजीवनी गायत्री महामंत्र को जपने का उपदेश दिया । उनकी वचन सिद्धि गजब की थी । उनके कह देने मात्र से लोगों के संतानें हो गयीं । जिसे उनने कह दिया अब तुम्हें कोई दुख नहीं होगा , सचमुच उसका सारा जीवन चैन से बीता । जिस किसी को भी जो आशीर्वाद देते थे, वह पूरा होकर रहता था । उनने हजारों व्यक्तियों को गायत्री उपासना में प्रवृत्त किया ।

गायत्री के सिद्ध साधक के नाते परम पूज्य गुरुदेव का जीवन

गायत्री साधना कैसे जीवन को प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष बना देती है व अगणित सिद्धियाँ जिनका वर्णन विभिन्न ग्रन्थों में देखने को मिलता है, वास्तव में मिलती हैं कि नहीं यह उत्सुकता हर किसी को हो सकती है । कोई जीता–जागता उदाहरण मिल जाए, मॉडल दिख जाए तो मानने को मन भी करता है । पौराणिक नियम व भूतकाल के उदाहरणों से संभवतः आज का बुद्धि जीवी मानस प्रभावित न हो, पर यदि वस्तुतः ऐसा कोई नमूना सामने हो तो बरबस विश्वास हो उठता है कि हाँ गायत्री उपासना के माहात्म्य के विषय में जो कुछ कहा गया है, वह सच हो सकता है क्योंकि प्रमाण सामने है । यह नमूना यह मॉडल है स्वयं परम पूज्य गुरुदेव का जीवन । अस्सी वर्षों तक उनने जो जीवन जिया, वह एक खुली किताब की तरह है । जो भी जब चाहे, तब इसमें से , जो अध्याय चाहे खोलकर देख सकता है व साधना से सिद्धि संबंधी मार्गदर्शन प्राप्त कर सकता है ।

अपनी जीवन यात्रा को परम पूज्य गुरुदेव एक ब्रह्म कमल की जीवन यात्रा की उपमा देते थे । विगत वर्ष बसन्तपर्व पर "महाकाल का बसंतपर्व पर संदेश " में उनने लिखा था कि "इस जीवन रूपी दुर्लभ ब्रह्मकमल के अस्सी फूल पूरी तरह खिल चुके । एक से एक शोभायमान पुष्पों के खिलते रहने का एक महत्वपूर्ण अध्याय पूरा हो चला ——सूत्र संचालक सत्ता के इस जीवन का प्रथम अध्याय पूरा हुआ स्वयं वे बसन्तपर्व से प्रायः साढ़े चार माह बाद माँ गायत्री के अवतरण के पावन पुण्य दिवस गायत्री जयन्ती (२ जून १९९०) को अपनी आध्यात्मिक माता की गोद में विश्राम हेतु चले गए । यह स्थूल काया के बंधनों से मुक्ति भर थी । सूक्ष्म व कारण शरीर से सक्रिय होने व परोक्ष जगत को प्रचण्ड ऊर्जा से तपाने के लिए उनने यह अनिवार्य समझा व अपनी मार्गदर्शक सत्ता के संकेतों पर स्वेच्छा से कायपिंजरों से दृश्य जीवन का पटाक्षेप कर दिया । जो जीवन इस महामानव ने अस्सी वर्ष तक जिया उसका एक–एक पल माँ गायत्री को समर्पित रहा है । गायत्री उनके रोम–रोम में थी, हर श्वास में थी ।

हम जब बाल्यकाल पर दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि बचपन से ही संस्कारवान साधक के चिन्ह उनमें विद्यमान थे , पाँच छह वर्ष का बालक बार–बार अमराई में जाकर बैठे व सहज ही आसन सिद्धि कर जप स्वयं भी करे व औरों को करने की प्रेरणा दे, यह असाधारण बात ही मानी जानी चाहिए, घर का वातावरण धार्मिक था, माता जी बड़े सात्विक विचारों वाली, सतत् शिक्षण देते रहने वाली एक स्नेही माँ थीं । पिता भागवत के प्रकाण्ड पण्डित थे । वे चाहते तो बाल्यकाल से ही पिताजी के पद चिन्हों पर चलते हुए कथावाचक भी बन सकते थे किन्तु ऐसा हुआ नहीं । उन्हें औपचारिक शिक्षा से कहीं अधिक याद हिमालय की आती थी । पूर्व जन्म में जहाँ तपस्या की थी, जिन ऋषि–मुनियों का सान्निध्य मिला था, उनकी स्मृति आ जाती थी । एक दिन वे घर से भाग लिए । उम्र थी मुश्किल से नौ वर्ष । गन्तव्य हिमालय का उत्तराखण्ड क्षेत्र । साधन कुछ नहीं , पता मालूम नहीं पर उत्कण्ठा इतनी तीव्र थी कि नजदीक के स्टेशन बरहन तक पहुँच गए । घर वालों को पता चला तो वापस लेकर आए । पिता ने गंभीरतापूर्वक सोचा कि अब यज्ञोपवीत संस्कार करा देना

तदित्यृ च समोनास्ति मंत्रो वेदा चतुष्टये ।
सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च दानानि च तपांसिच
समानि कलया प्राहुर्मुनयो नतदित्यृ चः ॥

–विश्वामित्र

"गायत्री के समान मंत्र चारों वेदों में नहीं है । सम्पूर्ण वेद, यज्ञ, दान, तप, गायत्री की एक कला के समान भी नहीं हैं, ऐसा मुनि लोग कहते हैं ।"

चाहिए । वे महामना मालवीय जी के पास बनारस पहुँचे व उनके हाथों द्विजत्व का यह पावन संस्कार संपन्न हुआ । मालवीय जी ने एक सूत्र उनके कान में दिया "गायत्री ब्राह्मण की कामधेनु है । इससे सब कुछ मिल सकता है भौतिक जगत का भी व आध्यात्मिक जगत का भी ।" बस यह सूत्र उनने गाँठ बाँध लिया ।

परम पूज्य गुरुदेव के जीवन का यह महत्वपूर्ण मोड़ था । गायत्री महाशक्ति से साक्षात्कार का भी यह पहला ही अवसर था । उनने ब्राह्मणत्व की सिद्धि की दिशा में प्रयास आरंभ कर दिया व संयमी जीवन की परमार्थ परायणता की भावना अपने अंदर विकसित की । ब्राह्मण की कामधेनु से आशय जो उन्हें समझ में आया वह यह कि जो ब्राह्मणत्व की प्राप्ति की दिशा में आगे बढ़े, अपना जीवन परिष्कृत कर ब्रह्मनिष्ठ बना ले, गायत्री उसकी हर कामना पूरी करती है । सारे जीवन भर जो भी दृश्य क्रियाकलाप गुरुदेव के जीवन में देखने को मिलते हैं, वे सब उसी तपश्चर्या की ब्राह्मणत्व की सिद्धि के हैं । वे अक्सर कहा करते थे कि "स्थूल जीवन से मैंने जो कुछ भी किया है, वह ब्राह्मणत्व का चमत्कार है । जो विशिष्ट अनुष्ठानादि किए हैं, उनका उपयोग तो मेरे जाने के बाद कारण शरीर की सत्ता करेगी ।" अपनी महत्वाकांक्षा को भौतिक से आध्यात्मिक मोड़ देकर सही अर्थों में ब्राह्मण बन कर जीना कितनी कठिन साधना है, यह हर कोई नहीं समझ सकता । किन्तु परम पूज्य गुरुदेव का जीवन जिनने देखा है, वे जानते हैं कि उनका एक-एक क्षण एक एक पल औरों को ऊँचा उठाने के निमित्त नियोजित था । निज के लिए उनने कभी कुछ माँगा नहीं । अपना सब कुछ पैतृक सम्पत्ति से लेकर आर्षग्रन्थों के भाष्य व तीन हजार पुस्तकों से मिल सकने वाली रायल्टी समाज को दान में दे दी । जो भी दिया वह बादल बनकर उनके पास लौटा, उन पर जीवन भर अनुग्रह बरसता रहा । जो भी कुछ उनने समाज के खेत में बोया, उसे समय आने पर काटा व फिर समाज में बाँट दिया । यही तो सिद्धि से अभिपूरित ब्राह्मण जीवन है ।

पंद्रह वर्ष की आयु में उनके जीवन का दूसरा महत्वपूर्ण मोड़ अपनी गुरुसत्ता से साक्षात्कार के रूप में आया । वे गायत्री उपासना के दौरान उनके कक्ष में सूक्ष्म छाया रूप में आए व विस्मित अपने शिष्य को पूर्वजन्मों की झाँकी तथा भविष्य के अनेकों कार्यक्रम का भार सौंप कर चले गए । पूर्वजन्मों की झाँकी इसलिए कि महाकाल की अवतारी सत्ता को आत्मबोध हो सके कि उनके अवतरण का कितना महान प्रयोजन है । हर गुरु ने अपने-अपने समय में अपने शिष्य को इसी तरह ज्ञानचक्षु दिए हैं । निर्देश साथ में यह दिए गए कि वे तुरंत चौबीस लक्ष के चौबीस महापुरश्चरण आरंभ कर दें । ये चौबीस वर्ष से सत्ताइस वर्ष में संपन्न किये जायँ । इस अवधि में किसी बंद कोठरी में न बैठकर रोजमर्रा का काम भी करें, स्वतंत्रता संग्राम में भाग भी लें तथा ज्ञानार्जन कर अखण्ड दीपक जो प्रज्वलित किया है, उसकी ज्योति घर-घर पहुँचाएँ ताकि गायत्री साधना का महत्व जन-जन को समझ में आ सके । अनुष्ठान की अवधि में मात्र जौकी रोटी व छाछ पर रहना था । जौ भी वह जो गाय द्वारा खाने के बाद गोबर में निकली हों व निथारकर उसे संग्रहीत किया गया हो । स्वयं तप किए बिना वह शक्ति कहाँ से आती, जिससे अगले दिनों सारे विश्व को मथना था । इसी कारण गुरु ने आदेश दिया व शिष्य ने सिर झुकाकर उसे स्वीकार ही नहीं, चालू भी कर दिया ।

गायत्री वेद जननी गायत्री पापनाशिनी ।
गायत्र्यास्तु परन्नास्ति दिविचेह च पावनम्

-वशिष्ठ

गायत्री वेदों की जननी है । गायत्री पापों का नाश करने वाली है । गायत्री से बड़ा और कोई पवित्र मंत्र स्वर्ग तथा पृथ्वी पर नहीं है ।

"दिवमारुहत तपसा तपस्वी" हमारी श्रुतियों का आदेश है । तप में प्रमाद न करने का ऋषि-मुनियों का निर्देश है । तप से ही सृष्टि का उद्भव हुआ व सूर्य तपकर ही प्राण ऊर्जा का जगती के कण-कण में संचार करता है । यही सब प्रमाणों को साक्षी रख उनने चौबीस महापुरश्चरण भी किए व इस बीच अनेकानेक घटनाक्रम उनके जीवन में घटे । ब्राह्मण व तपस्वी सही अर्थों में वे थे व इसी कारण उन्हीं दिनों

छिड़े स्वतंत्रता संग्राम में उनने भागीदारी सक्रियतापूर्वक की । यहाँ तक कि बापू (महात्मागाँधी) ने देहात के इस स्वयं सेवक से मिलना चाहा व उनसे नैनीताल में मिले । यज्ञोपवीत के नौधागे जो उनने धारण किए थे , उसके एक-एक गुण उनके जीवन में फलितार्थ होते चले गए । सत्य, अहिंसा, अस्तेय, मैत्री, ब्रह्मचर्य , साधना , स्वाध्याय, शुचिता, सेवा के एक से एक मार्मिक प्रसंग उनके जीवनक्रम में देखे जा सकते हैं । उनके अधिक विस्तार में न जाकर जब "अखण्ड-ज्योति " पत्रिका का शुभारंभ हम देखते हैं तो पाते हैं कि यह छोटा सा बीजारोपण गायत्री के तत्वज्ञान के विस्तार का था । इस बीज से जो वटवृक्ष बनने वाला था, उसी की छाया में अगले दिनों गायत्री परिवार तथा युगनिर्माण योजना नामक विशाल संगठन बनना था ।" एकोहं बहुस्यामि " का मूल मंत्र उनने "अखण्ड-ज्योति " के प्रकाशन से कार्य रूप में उतारना आरंभ किया व चिट्ठी की तरह निकली प्रारंभिक पत्रिका की सौ प्रतियाँ देखते-देखते हजार व लाखों में छपने लगीं । यह वस्तुतः उनकी साधना की प्रत्यक्ष सिद्धि का प्रमाण है कि आज उसी पत्रिका की पाँच लाख से अधिक प्रतियाँ आधुनिकतम मशीनों द्वारा छपती हैं व दस गुने पाठकों द्वारा पढ़ी जाती हैं । गायत्री परिवार को जन्म वस्तुतः "अखण्ड-ज्योति " ने दिया है व इसे पूज्य गुरुदेव "नवयुग के मत्स्यावतार" की उक्ति दिया करते थे, जो कि नितान्त सटीक है ।

"गायत्री चर्चा " नामक स्तंभ के माध्यम से पूज्य गुरुदेव ने "अखण्ड-ज्योति " के पाठकों को प्रेरणा दी कि वे गायत्री उपासना को जीवन में स्थान दें । इसके चमत्कारी परिणामों से लेकर जीवन के ऊँचा उठने तक की बातें उनने पत्रिका, किताबों व व्यक्तिगत पत्र से सब तक पहुँचायी । जिनने सही अर्थों में गायत्री को समझा व जीवन में उसकी साधना को उतारा उसका जीवन ही बदल गया । कोई अभाव था, वह दूर होता चला गया, घर में साधन समृद्धि आ गयी व प्रतिकूलताएँ मिटती चली गयीं । जीवन साधना के फलस्वरूप नीरोग, दीर्घ जीवन अनुदान रूप में मिला व सद्ज्ञान मिलते चलने से जीवन के भावी स्वरूप के प्रति दृष्टि मिली । ये प्रत्यक्ष अनुग्रह जिन्हें मिले उन्हें उनने उच्चस्तरीय कक्षाओं में चढ़ाया व उनके माध्यम से नये व्यक्तियों तक प्रेरणा पहुँचाई । देखते-देखते लाखों व्यक्ति जुड़ गए । गायत्री महाविज्ञान नामक एक विश्व कोश जिसमें गायत्री साधना संबंधी सब कुछ जो पाठक चाहते थे, वर्णित था इन्हीं दिनों पहले पाँच खण्डों में, फिर तीन खण्डों में प्रकाशित हुआ । यह स्वयं में एक अभूतपूर्व रचना थी क्योंकि अब तक गायत्री महाशक्ति पर कहीं भी संकलित रूप में कोई ग्रन्थ नहीं था । संस्कृत में संहिताएँ सब कोई तो पढ़ नहीं सकते थे अतः सारे ग्रन्थों से सार निकाल कर अपना एक महत्वपूर्ण शोध प्रबन्ध उनने जन-जन को समर्पित कर दिया । १९५८ में प्रकाशित इस ग्रन्थ के अट्ठाइस संस्करण अब तक प्रकाशित हो चुके हैं व न्यूनतम पच्चीस लाख लोगों तक यह सद्ज्ञान पहुँच चुका है । अगणित व्यक्तियों की शंकाएँ मिटीं व गायत्री मंत्र जन-जन के लिए बिना किसी धर्म, जाति, मत पंथ व लिंग के अब सुलभ हो गया है । यह क्रांति गायत्री महाशक्ति की सिद्धि की ही परिणति है । अवतारी स्तर की सत्ता ही यह सब कुछ कर सकती हैं ।

महामना मदन मोहन मालवीय जी ने कहा है-"ऋषियों ने जो अमूल्य रत्न हमें दिए हैं, उनमें से एक अनुपम रत्न गायत्री ऐसा है, जिससे बुद्धि पवित्र होती है । गायत्री में ईश्वर में श्रद्धा उत्पन्न करने की शक्ति है । साथ ही वह भौतिक अभावों को भी दूर करती है ।"

महात्मा गाँधी कहते हैं-"गायत्री मंत्र का निरन्तर जप रोगियों को अच्छा करने और आत्माओं की उन्नति के लिए उपयोगी है । गायत्री का स्थिर चित्त और शान्त हृदय से किया गया जप आपत्ति काल के संकट दूर करने की प्रभाव क्षमता रखता है ।"

गायत्री तपोभूमि की अपने चौबीस महापुरश्चरणों की समाप्ति पर स्थापना, अखण्ड अग्नि की स्थापना, चौबीस सौ तीर्थों की जल व रज की स्थापना उनके संक्षिप्त से मथुरा निवास के महत्वपूर्ण क्रियाकलाप हैं , यहीं पर १९५८ में एक विशाल गायत्री महायज्ञ १००८ कुण्डों में संपन्न हुआ जिसमें पाँच से दस लाख लोगों ने भागीदारी की । गायत्री तत्वज्ञान को भारत के कोने कोने व विश्वभर में पहुँचाने की रूपरेखा इसी यज्ञ में बनी । इस यज्ञ से जुड़ी अनेकानेक विलक्षणताएँ, चमत्कारी सिद्धियाँ समय-समय पर पाठकों को बताई

जाती रही हैं व वे प्रमाण हैं परम पूज्य गुरुदेव की गायत्री सिद्धि का । हिमालय जाकर तप इसी के बाद उनने किया व एक वर्ष तक अज्ञातवास में रहकर वेद, दर्शन, पुराण उपनिषद, स्मृति आरण्यक आदि का भाष्य किया । यह बहुलीकरण की सिद्धि का चमत्कार है कि जो काम एक व्यक्ति ने किया, वह अनेकों व्यक्तियों के श्रम के बराबर था । संगठन का सूत्र संचालन, पत्रिका का संपादन नियमित पुस्तकों का प्रकाशन, निजी जीवन की तपश्चर्या, सभी को पत्र द्वारा दैनन्दिन मार्गदर्शन, व्यक्तिगत भेंट मुलाकात तथा देशव्यापी दौरे यह सब काम एक साथ सामान्य व्यक्ति नहीं चला सकता ।

मथुरा में ही उनने एक असाधारण संकल्प का उद्घोष किया व उसे प्रकाशित किया "युग निर्माण सत्संकल्प " के रूप में । इसे उनने नवयुग का संविधान कहा व बताया कि सतयुग इसी आधार पर अगले दिनों आएगा । यह दुस्साहस नूतन सृष्टि का सृजन करने वाले ब्रह्मर्षि के स्तर का ही तो था । आज जब हम इक्कीसवीं सदी के मुहाने पर खड़े हैं तो हमें प्रत्यक्ष दीख पड़ता है कि सतयुग की वापसी उनके द्वारा बताए गए सिद्धान्तों पर सुनिश्चित है ।

वर्णाश्रम धर्म के आधार पर मथुरा छोड़कर हरिद्वार आना उनके जीवन का एक पूर्व नियोजित उत्तर अध्याय है, जिसकी घोषणा उनने १९६१ से ही करना आरंभ कर दी थी । हरिद्वार आकर दिव्य दृष्टि से ब्रह्मर्षि विश्वामित्र की तपस्थली सप्त सरोवर क्षेत्र में उनने ढूँढ़ निकाली व यहीं वह बीजारोपण आरंभ हुआ जिसे आगामी बीस वर्षों में बढ़ना व अतिविस्तृत रूप लेना था । परम पूज्य गुरुदेव के जीवन के चौथे भाग जो १९७१ से १९९० के बीच का है, का बहुत सा स्वरूप प्रत्यक्ष है जो गायत्री तीर्थ शांतिकुंज के विशाल विस्तार व देश व्यापी क्रियाकलापों के रूप में दिखाई पड़ता है । किन्तु उसका बहुत सा भाग परोक्ष है जो अभी सबकी निगाह में नहीं है पर अगले दिनों साकार होता जिसे सब देखेंगे । उनकी तपश्चर्या के बहुमूल्य कुछ वर्ष शांतिकुंज में ही व्यतीत हुए हैं । यहीं उनने प्राण प्रत्यावर्तन के, कल्प साधना के व संजीवनी साधना के महत्वपूर्ण शिक्षण सत्र चलाए । यहीं पर उनकी एकाकी सूक्ष्मीकरण तपश्चर्या संपन्न हुई । यहीं पर अध्यात्म व विज्ञान के समन्वय का उनका संकल्प ब्रह्मवर्चस् के रूप में साकार होकर सामने आया । यहीं पर उनने भारत भर में प्रज्ञा संस्थान बनाने व जन-जन तक ब्राह्मणत्व के विस्तार का संकल्प लिया व देखते-देखते तीन हजार से अधिक शक्ति पीठें पूरे भारत वर्ष भर में बन गईं । यहीं पर उनने देवात्म शक्ति के कुण्डलिनी जागरण की साधना संपन्न की व विश्व भर में गायत्री महाशक्ति के विस्तार के रूप में उसे अगले दिनों ही साकार होता देखा जा सकेगा । उसका शुभारंभ इसी वर्ष पश्चिम के देशों की यात्रा व हजारों घरों में देव स्थापना से हो चुका है ।

शक्ति साधना कार्यक्रमों द्वारा जन-जन तक गायत्री महाविद्या के विस्तार का संकल्प जो परम पूज्य गुरुदेव के निर्देश पर यहाँ से उठाया गया है, वह भी यही संकेत देता है कि अगले दिनों वातावरण गायत्रीमय होने जा रहा है । प्रज्ञावतार का निष्कलंक निराकार रूप में अवतरण हो चुका है, दुर्बुद्धि का साम्राज्य मिटने वाला है व सद्बुद्धि का विस्तार जन-जन तक होने जा रहा है ।

सर्व वेद सारभूता गायत्र्या समर्चना ब्रह्मादयोऽपि संध्यायां तांध्यायन्ति जपन्ति च ॥

-देवी भागवत (स्क. १६,अ. १६/१५)

"गायत्री मंत्र का आराधन समस्त वेदों का सारभूत है । ब्रह्मादि देवता भी संध्याकाल में गायत्री का ध्यान करते हैं और जप करते हैं ।

गायत्री महामंत्र के संबंध में अथर्ववेद में जो सूक्त आया है वह कहता है "स्तुतामया वरदा वेद माता प्रचेदयन्ताम् । पावमानी द्विजानां आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं, द्रविणं ब्रह्मवर्चस्म महयम दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्"। इसका एक-एक शब्द, अक्षर सही है । यह सारा माहात्म्य हम परम पूज्य गुरुदेव के जीवन में, गायत्री तीर्थ में, शांतिकुंज की युगान्तरीय चेतना में उतरा हुआ प्रत्यक्ष देख सकते हैं । यह साक्षी है उन सब फलितार्थों का , जो गायत्री महामंत्र से जुड़े हुए हैं व जिनके लिए हर व्यक्ति एक जीती जागती मिसाल देखने को उत्सुक बना रहता है । उन सभी को आमंत्रण है, जो जानना चाहते हों कैसे माँ गायत्री के अनुदान जीवन में उतारे जायँ । *

अपनों से अपनी बात :–

शक्ति का बीजारोपण तीन दिवसीय कार्यक्रमों द्वारा

परम पूज्य गुरुदेव की प्रथम पुण्य तिथि पर पाँच दिन का अखण्ड आयोजन जो केन्द्र में संपन्न किया गया, उस विराट जपयज्ञ का प्रथम पड़ाव था जो युगसन्धि की इस वेला में संपन्न होना है। जन–जन में संव्याप्त कष्टों–दुखों के निवारण हेतु शक्ति का अवलम्बन जरूरी है एवं इसी कारण प्रस्तुत वर्ष को शक्ति साधना वर्ष घोषित कर देश भर में अखण्ड गायत्री जप प्रधान कार्यक्रम संपन्न किए जाने की बात कही गयी है। ये तीन दिवसीय कार्यक्रम यह अंक पाठकों के हाथ में पहुँचने तक आश्विन नवरात्रि से आरंभ हो जाएँगे। लगातार आठ माह तक दो सौ चालीस स्थानों पर यह अखण्ड जप प्रक्रिया संपन्न होगी एवं इसमें लाखों व्यक्तियों की भागीदारी होने जा रही है।

गायत्री परिवार की एक बाजपेय स्तर के महायज्ञ में साझेदारी हेतु यह श्रंखला जो आरंभ की गयी है, अब अनवरत सन् २००१ तक चलती ही रहेगी। इससे कम में युग विभीषिकाओं का उपचार संभव नहीं है। दुर्बुद्धि से लड़ने के लिए सद्बुद्धि की सामूहिक शक्ति को ही सामने लाकर खड़ा करना जरूरी है। शब्द शक्ति की महत्ता व वैज्ञानिक विशेषता से जो परिचित हैं, वे इस स्तर के उपचारों की विशिष्टता समझते हैं। इसके प्रतिफल कितने अद्भुत व अपरिमित परिणाम प्रस्तुत करने वाले होंगे, इसे परिजन स्वयं अपनी आँखों से अगले दिनों देख सकेंगे।

ये अनुग्रह अनुदान वर्षा के कार्यक्रम तीन–तीन दिन के हैं। शांतिकुंज द्वारा निर्धारित चार या पाँच वानप्रस्थी कार्यकर्ताओं की टोली जिस दिन पहुँचेगी उस दिन सायंकाल निर्धारित साधना स्थल के मुख्य मंचपर देव साक्षी स्वरूप परम पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के साथ माँ गायत्री के चित्र एवं अखण्ड दीप की विधिवत वेद मंत्रों के साथ स्थापना की जाएगी। टोली द्वारा संकीर्तन के पश्चात् तीन दिन की साधना के अनुबंधों का खुलासा होगा तथा परम पूज्य गुरुदेव के अभिव्यक्त जीवन की सिद्धियों–शक्तियों एवं गायत्री उपासना की स्थूल शरीर साधना पर प्रथम प्रवचन संपन्न होगा। कलश यात्रा इससे पूर्व ही स्थानीय परिजनों द्वारा संपन्न कर ली जायगी।

दूसरे दिन प्रातःकाल पाँच बजे जागरण के पश्चात् एक घण्टे तक युग संगीत का प्रसारण सभास्थल पर धीमी ध्वनि में होगा। प्रातः ६ बजे आरती –सविता स्तवन वंदनीया माताजी के स्वर में टेपरिकार्ड द्वारा होगा। षट्कर्म के पश्चात् स्थूल शरीर की ध्यान साधना के निर्देश पूज्य गुरुदेव की वाणी में टेप द्वारा दिये जाएँगे। ध्यान धारणा के तुरन्त बाद अखण्ड जप आरंभ होगा, जो सूर्यास्त तक चलेगा। अखण्ड जप के साथ पूरे कार्यक्रम की अवधि तक जलने वाला अखण्ड दीपक प्रज्वलित रहेगा। परिजन एक–एक घण्टे में पारी बदलते रहेंगे व अधिक से अधिक नये परिजनों की भागीदारी पर विशेष जोर देंगे। जप करने वाले शांति से स्थान बदलें व पंचोपचार के बाद जप आरंभ कर दें। एक दूसरे से बातचीत न करें। आयोजक भी स्थान पर शांति यथा संभव बनाए रखें। सायंकाल सूर्यास्त के बाद अखण्ड जप का समापन सायंकालीन गायत्री आरती के साथ होगा। एक घण्टे तक युग संगीत के बाद शांतिकुंज प्रतिनिधि परमपूज्य गुरुदेव के सूक्ष्म शरीर से संपन्न कर्तृत्व एवं गायत्री की परोक्ष सामर्थ्य पर वंदनीया माताजी का विशेष संदेश सबको सुनाएँगे। रात्रि नौ बजे यह कार्यक्रम संपन्न होगा।

तीसरे दिन की ध्यान साधना सूक्ष्म शरीर की होगी व प्रातः से सायं तक दूसरे दिन जैसा ही क्रम चलेगा। ध्यान साधना से पूर्व इस दिन मंत्र दीक्षा संस्कार संपन्न होंगे। अन्य कोई संस्कार अलग प्रवचन पण्डाल में संपन्न होंगे। इस दिन अखंड जप का समापन सायं कालीन दीपयज्ञ के साथ संपन्न होगा तथा इसके पश्चात् परम पूज्य गुरुदेव की कारण सत्ता, युग–शक्ति गायत्री द्वारा युग–परिवर्तन में भावी भूमिका पर वंदनीया माताजी का सन्देश सबको सुनाया जाएगा। अखण्ड जप के दौरान शांतिकुंज टोली घर–घर देव स्थापना कार्यक्रम संपन्न करती रहेगी। चौथे दिन प्रातः कारण शरीर की ध्यानधारणा के बाद आधा घण्टा सामूहिक जप कर एक घण्टे की स्थानीय कार्यकर्ताओं की गोष्ठी लेकर टोली विदाई लेकर अगले स्थान के लिए चल पड़ेगी। यह मान कर चलना चाहिए कि संधिकाल में किये जा रहे यह साधना बीजारोपण कार्यक्रम परोक्ष जगत के संशोधन के निमित्त किये जा रहे अध्यात्म उपचार की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया संपन्न करेंगे, अधिक से अधिक धर्म-प्रेमी भाई व बहनों को इसमें सम्मिलित सभी पुण्य के भागी बन सकते हैं। *

अखण्ड-ज्योति मासिक

रजिस्टर्ड नं० एम.टी.आर. ९८
रजि० नं० आर. एन. २१६२/५२

लाइसेन्स संख्या एम.टी.आर. ८ डाक व्यय की पहले अदायगी किये बिना डाक में डालने के लिये लाइसेन्स प्राप्त

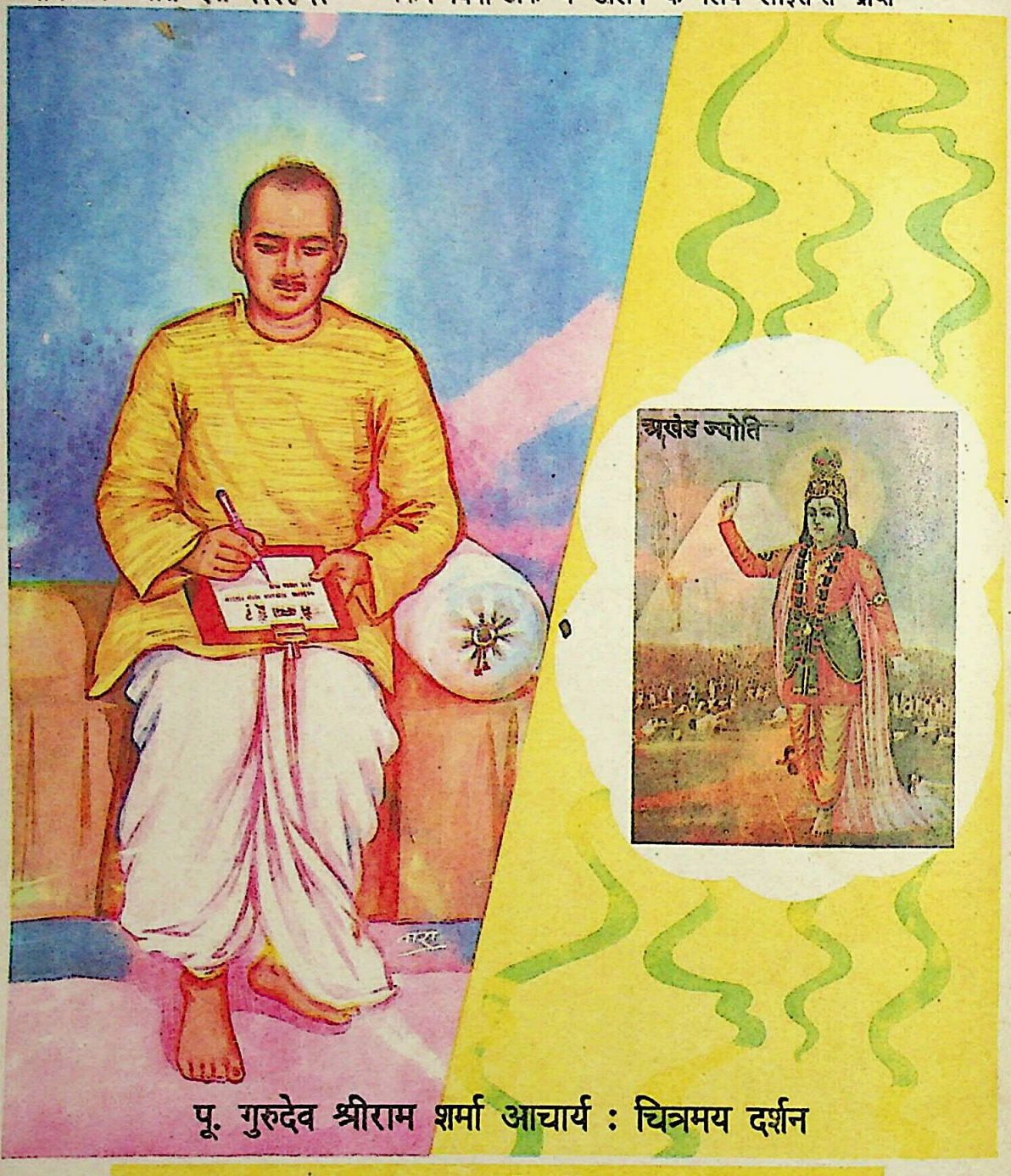

पू. गुरुदेव श्रीराम शर्मा आचार्य : चित्रमय दर्शन

वह यात्रा जो अखण्ड-ज्योति के रूप में अनवरत चलनी थी की शुरूआत "मैं क्या हूँ"? आत्मोपनिषद् प्रधान पुस्तक से की गई ।

सम्पादक - भगवती देवी शर्मा, प्रकाशक व मुद्रक - मृत्युञ्जय शर्मा
अखण्ड-ज्योति संस्थान द्वारा जन जागरण प्रेस मथुरा २८१००३ में मुद्रित ।